ॐ

तत्सद्ब्रह्मणे नमः ॥

एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म ॥

अथ अथर्ववेदीयप्रश्नोपनिषद् ॥

इस उपनिषद् में कवंधी आदि छः ऋषियोंने शिष्यभाव से पृथक् २ प्रश्न किये हैं और उनके उत्तर पिप्पलादनामक आचार्य ने दिये हैं। एतदर्थ इस उपनिषद् का नाम प्रश्नोपनिषद् है। उसकी भाषाटीका श्रीशंकराचार्यजी के भाष्य और आनन्दगिरि टीका और पंडित पीताम्बरजी के अनुवादके आशय पर गुरु शिष्य के संवाद द्वारा हुई है ॥

भूमिका ।

अथर्वणवेदके मन्त्रों से अर्थात् परिमित अक्षरवाले जो वेदके वाक्यहैं उनको मन्त्र कहते हैं तिनकरके बोधित जो अर्थ है तिनका विस्तार करके ऽ [अर्थात् अथर्वण वेद में 'ब्रह्मा देवानामित्यादि' <ब्रह्मादेवताओंकोइत्यादि>मन्त्रोंसेही आत्मतत्त्वका निर्णय किया होने से । और तिसही अथर्वण वेद विषे इस उपनिषद्रूप ब्राह्मण-भाग से पुनः तिसही आत्मतत्त्वका कथन है सो पुनरुक्ति दोषहै। यह आशंका चित्त विषे होती है सो नहीं क्योंकि मन्त्रों करके संक्षेपमात्र कथन किया जो आत्मतत्त्व तिसही का यहां इस ब्राह्मण-भाग करके सविस्तर प्राणकी उपासना आदिक साधनोंसहित होनेसे कथन है एतदर्थ पुनरुक्ति दोषहै नहीं । इसप्रकार कहते हुये आचार्य इस ब्राह्मणभागको प्रकटकरते हैं॥ यहां यह विशेषहै कि मंत्ररूप जो विद्या है सो 'पराचैवापराच' इस प्रमाणसे पर अपर भेदसे दोप्रकारकी है । तिन में शिक्षाआदि छः अंगोसहित जो ऋग्वेदादि नामों करके विख्यात विद्या सो कर्म्मरूप और उपा-सनारूप होने से अविद्याहै तिन विषे जो दूसरी उपासनारूपहै सो द्वितीय और तृतीय इन दोनों प्रश्नों करके प्रतिपादन कीजायगी और प्रथमा जो कर्मरूपा है सो कर्मकांड विषे वर्णन कियाहै एतदर्थ यहां उसका वर्णन नहीं करते । और कर्मरूप और उपासनारूप जो विद्या है तिनके फल अनित्यादि दोष करके युक्तहैं ताते मुमुक्षु को तिनसे वैराग्यार्थ प्रथम प्रश्न विषे स्पष्ट करते हैं । और प्रथम कही जे पर अपर दोविद्या तिन विषे दूसरी जो परविद्या है सो उसको कहते हैं 'अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते' < अब जिससे सो अक्षर

ज्ञानिये सो पराविद्या है > इसप्रकार आरंभ करके समस्त मुंडक-उपनिषद् से प्रतिपादन किया है। तिस विषेभी 'यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिङ्गाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः' < जैसे प्रज्वलित अग्नि से सहस्रावधि चिनगारियां प्रकटहोती हैं > इत्यादि दोनों मन्त्रों करके उक्त जो अर्थ है तिसके विस्तारार्थ चतुर्थ प्रश्न है। और 'प्रणवो धनुः' < ॐकार धनुष है > इसमंत्र विषे जो उक्त अर्थ है तिसको स्पष्ट करने के अर्थ पंचम और षष्ठ प्रश्न हैं इस रीतिसे यह प्रश्न उपनिषद्रूप ब्राह्मण आत्मप्रतिपादक मन्त्रोंका विस्तारसे अनुवाद करनेवाला है एतदर्थही इसके विषय और प्रयोजनादिक अनुबन्ध तहांही कहे हैं एतदर्थ यहां पुनः नहीं कहते। ऐसे जानना] अनुवादसे यह प्रश्नोपनिषद्रूप ब्राह्मण [अपरिमित अक्षरवाला जो वेदका वाक्य तिसको ब्राह्मण कहते हैं] प्रारंभ करते हैं। और इस उपनिषद् विषे ऋषियों के प्रश्न और उत्तररूप जो आख्यायिका है सो विद्या की स्तुत्यर्थ है। और सो ब्रह्मविद्या ,कि जिस करके अक्षरब्रह्म की प्राप्तिहोती है, सो आगे कहेहुये प्रकारसे संवत्सर (एकवर्ष) पर्यन्त ब्रह्मचर्य से गुरुकुल विषे वास और तप आदिक साधनों करके युक्त जो अधिकारी तिन करके ग्रहण करने और पिप्पलाद आदिक सर्वज्ञ मुनीश्वरों के तुल्य जो आचार्य्य तिन करके कहने योग्य है जिस किस करके नहीं। ऐसी विद्या की स्तुति करते हैं। और ब्रह्मचर्य्यादि। अर्थात् [इस ऋषियों की आख्यायिका का पूर्व कल्पविषे विद्यमान साधनों के स्वरूपसे ब्रह्मचर्य्य और तप आदिक साधनों का विधानरूप अन्य प्रयोजन है ऐसे कहते हैं] अर्थात् वेदमें कल्पान्तर भेद नहीं सर्व कल्पों में वेद एकही है ताते इस सनातन आख्यायिका से ब्रह्मचर्य्यादि साधनों की सूचनासे तिनके करने की योग्यता सिद्ध होती है॥

अनुक्रमणिका।

(१)-भूमिका

(२)-विज्ञापन

(३)-विनय

(४)-मूल मन्त्र पुष्टाक्षरों में

(५)-भाषा में भावार्थ सहित मूल अरु अक्षरार्थ के

' ' इस चिह्नान्तर में मूल के पद

< > इस चिह्नान्तर में मूलपदके अक्षरार्थ

[ ] इस चिह्नान्तर में आनन्दगिरि टीका का अनुवाद

( ) इस चिह्नान्तर में पर्याय शब्द

ऽ ऽ इस चिह्नान्तर में अर्थयोजना

" " इस चिह्नान्तर में अन्य श्रुतियों का प्रमाण

अथ प्रश्नोपनिषदि प्रथमप्रश्नः ॥ १ ॥

ॐ सुकेशा च भारद्वाजः, शैब्यश्च सत्यकामः, सौर्य्यायणी च गार्ग्यः, कौशल्यश्चाश्वलायनो, भार्गवो वैदर्भिः, कबन्धी कात्यायनस्ते, हैते, ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परंब्रह्मान्वेषमाणा एष ह वैतत्सर्व्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः ॥ १ ॥

प्रश्नोपनिषद् के प्रथमप्रश्नकी भाषाटीका का प्रारम्भ।

श्रीगुरुरुवाच । हे सौम्य ! हे प्रियदर्शन ! अब सावधान होके प्रश्न उपनिषद्कोभी श्रवण करो 'सुकेशा च भारद्वाजः' <भरद्वाज का पुत्र सुकेशा> नामवाला मुनि। और 'शैब्यश्च सत्यकामः' <शिबि ऋषिका पुत्र सत्यकाम> नामवाला मुनि। और 'सौर्य्यायणी च गार्ग्यः' <सूर्य्यके पुत्र सौर्यमुनि तिसका पुत्र सौर्य्यायणी सो गर्गगोत्र विषे उत्पन्नभया ताते गार्ग्य> नाम वाला मुनि। और 'कौशल्यश्चाश्वलायनः' <अश्वलऋषि का पुत्र कौशल्य> नामवाला मुनि । और 'भार्गवो वैदर्भिः' <विदर्भदेशका रहनेवाला भृगुके गोत्र विषे उत्पन्न भया इससे भार्गव> नामवाला मुनि। और 'कबन्धी कात्यायनः' <कत्यके पुत्र कात्यायन ऋषिरूप प्रपितामह (परदादे) वाला कबन्धी नामक> सुनि 'ते हैते' <यह विख्यात> छः मुनीश्वर सो 'ब्रह्मपराः' <ब्रह्मपर> अर्थात् अपरब्रह्म (प्राणोपासना) के लिये तत्पर होने करके प्राप्तभये हैं इससे ब्रह्मपर हैं। अथवा अपरब्रह्म जे छहों अंगों सहित ऋगादि वेदरूप अपराविद्या तिसबिषे निष्णात भये ताते ब्रह्मपर हैं। और ऽ 'ब्रह्मनिष्ठाः' <ब्रह्मनिष्ठ हैं>

अर्थात् ऽ ऋगादिवेद करके प्रतिपाद्य जे यज्ञरूप ब्रह्म तिसके अनुष्ठानविषे निष्ठावाले होने करके ब्रह्मनिष्ठ हैं सो ऽ 'परब्रह्मान्वेषमाणाः' < परब्रह्म को खोजतेहुये > ऽ जो नित्यवस्तु जानने योग्यहै सो क्याहै तिसकी प्राप्त्यर्थ हम अपनी इच्छाके अनुसार यत्न करेंगे ऽ इस अभिप्रायसे परब्रह्म को अन्वेषण करते हुये। और तिसके जानने के अर्थ 'एष हवैतत्सर्वं वक्ष्यतीति' < यह आचार्य निश्चयकरके सो सर्व कहेगा ऐसे> विचारके 'ते ह समित्पाणयो भगवन्तं पिप्पलादमुपसन्नाः' < वे सर्व समित्पाणि हुये पूजावान् पिप्पलाद मुनि के समीप जाते हुये> अर्थात् सुकेशा आदि छहों मुनि समिधादि लेके [यह समिधा का जो ग्रहण है सो यथायोग्य दातुन काष्ठआदिक आचार्य्य के उपयोगी सामग्री के ग्रहणार्थ है; क्योंकि 'आचार्य्याय प्रियं धनमाहृत्य' इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण हैं; और सूखे काष्ठरूप जो समिध है सो भी अग्निहोत्रादि कर्मों विषे ऋषियों को उपयोगी होते हैं ताते उनके ग्रहणार्थ भी विधि है परन्तु मुमुक्षु को आचार्य के उपयोगी पदार्थरूप भेट हाथ में लेकर शरण होना योग्य है यह अभिप्राय है] सर्व करके पूजनीय भगवान् पिप्पलाद मुनिरूप आचार्य के समीप जातेभये। अर्थात् [आचार्यको उपयोगी प्रियवस्तु सो भेटके अर्थ हाथ में ले समीप जाय भेट उनके आगे रख उनके चरण ग्रहण करके हे भगवन्! < 'मुमुक्षुर्वै शरणमहं प्रपद्ये' > मैं मुमुक्षु आपकी शरणहौं ताते मुझको ब्रह्मविद्या का उपदेश करो। इत्यादि प्रकार सविनय स्वाभीष्ट वचन के उच्चारणपूर्वक साष्टांग प्रणामरूप उपसत्ति (शुश्रूषा, सेवा) को करते भये] ॥ १ ॥ ॐ तत्सत् ॥

२ हे सौम्य! पूर्वोक्त प्रकार जब वे छहों मुनि पिप्पलादरूप आचार्यकी शरणभये तब 'तान् ह स ऋषिरुवाच' < तिन को सो ऋषि स्पष्ट कहता भया > अर्थात् तिनके समीप आये छहों मुनि तिनको सो आचार्य पिप्पलादमुनि स्पष्ट कहता भया

तान् ह स ऋषिरुवाच भूय एव तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ यथाकामं प्रश्नान् पृच्छथ यदि विज्ञास्यामः सर्वं ह वो वक्ष्याम इति ॥ २ ॥

अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ । भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ ३ ॥

ऽ पिप्पलादउवाच ' भूय एव तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया संवत्सरं संवत्स्यथ ' < फेर भी तपसे ब्रह्मचर्य से श्रद्धासे संवत्सर पर्यन्त सम्यक् वास करो > ऽ यद्यपि तुम सर्व तपस्वी ही हो तथापि यहां फेर भी विशेषकरके नियताहारादिरूप तपसे और इन्द्रियों के संयमरूप ब्रह्मचर्य से और आस्तिक भावकी बुद्धिरूप श्रद्धासे आदरवान् हुये एकवर्ष के कालपर्यन्त सम्यक्प्रकार गुरुकी सेवा बिषे तत्परहुये निवास करो । तिसके अनन्तर; ' यथा कामं प्रश्नान् पृच्छथ ' <जैसी इच्छा होय (तिसके अनुसार) प्रश्नों को पूछो > ऽ जिसको जैसी इच्छा होय सो अपनी इच्छाके अनुसार जिस विषयकी जिज्ञासा होय तिस विषयके सम्बन्धी प्रश्नों को पूछो ऽ ' यदि विज्ञास्यामः सर्व्वं ह वो वक्ष्याम इति ' < जब जानते होंगे तुम्हारे सर्व स्पष्ट कहेंगे >। यदि हम तिस तुम करके पूछी हुई वस्तुको जानते होंगे तब तुम्हारे पूछेहुये वस्तुओं को स्पष्ट कहेंगे [यहां ,यदि, शब्दका पर्यायरूप जो ' जब ' शब्द है सो आचार्य की निरभिमानता के लखावने के अर्थ है कुछ अज्ञान और संशयके अर्थ नहीं । यह सर्व प्रश्नोंके निर्णयते बोधित है] ॥ २ ॥

३ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार पिप्पलाद मुनि की आज्ञानुसार कौशल्य आदि छहों मुनियों ने ब्रह्मचर्यादि साधनपूर्वक निवास किया ऽ ' अथ कबन्धी कात्यायन उपेत्य पप्रच्छ ' ' एक

वर्ष पीछे कात्यायनका प्रपौत्र कवन्धी समीपजायके पूछता भया> अर्थात् ऽ जब एकवर्ष पर्यन्त ब्रह्मचर्य्य कररहे तब तिसके पश्चात् कात्यायन ऋषिका प्रपौत्र (परपोता) कबन्धी नामवाला मुनि अपने आचार्य पिप्पलाद मुनि तिनके समीप जाय प्रणामकर प्रश्न करताभया जो ऽ 'भगवन् कुतो ह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्त इति' < हे भगवन् ! यह प्रसिद्ध प्रजा किसकारण से उपजे हैं > ऽ हे भगवन् ! यह प्रसिद्ध ब्राह्मणादि प्रजा किसकारणसे उपजती हैं ऽ ॥ प्रश्न ॥ [वे छहों मुनीश्वर परब्रह्म के जानने की जिज्ञासावान् हुये पिप्पलाद मुनिरूप आचार्य के समीपगये इसप्रकारसे आरम्भ कियेहुये इस परब्रह्मकी जिज्ञासाके प्रकरण विषे प्रजापतिकृत प्रजा की सृष्टिको विषयकरनेवाले प्रश्न और उत्तर का कथन असंगत है ॥ उत्तर ॥ हे सौम्य ! यह शंका चित्तमें विचार के ही प्रश्न उत्तर रूप श्रुतिका तात्पर्य कहते हैं यहां यह भाव है कि 'तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोक इति' < तिसको यह निर्मल ब्रह्मलोक होता है > इस प्रकार उपासना के समुच्चय करके युक्त कर्म के कार्य ब्रह्मलोक को और 'अथोत्तरेण इति' < अब उत्तरायण से > इस प्रकार जिस ब्रह्मलोक की गतिरूप देवयान मार्ग को आगे इसही प्रथम प्रश्न विषे कथन किया होनेसे यह अर्थ बनता है। और यह उपासना करके युक्त जो कर्मका कथन है सो केवल कर्मों का उपलक्षण है, इसप्रकार भी जानना क्योंकि केवल कर्म के कार्य इन्द्रलोकको और तिस इन्द्रलोक की गतिरूप पितृयानमार्ग को भी 'तेषामेवैषब्रह्मलोकः' तिनकोही यह ब्रह्मलोक (चन्द्रमंडलस्थ इन्द्रलोक) होता है । और 'प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्त इति' < प्रजाकी कामनावाले दक्षिणायन मार्गको पावते हैं > इस प्रकार आगे इसप्रथम प्रश्नविषेही कथन किया होनेसे ॥ और यद्यपि परब्रह्म की जिज्ञासाके अवसर विषे यह कथन भी असंगत ही है तथापि केवल कर्मके कार्यसे और उपासनारूप कर्मके कार्य से जो विरक्त है तिसकोही तहां अधिकार है एतदर्थ तिसकर्म उपा-

तस्मै सहोवाच प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत स तपस्तप्त्वा स मिथुनमुत्पादयते। रयिञ्च प्राणंश्चेत्येतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति॥ ४॥

सनाके फलसे वैराग्यार्थ यह कहतेहैं। यद्यपि प्रश्नसे सृष्टि प्रतीत होती है तथापि तिस सृष्टिके कथन विषे प्रयोजनके अभावसे सृष्टिके कथनके मिस (बहाना) करके परब्रह्मकी विद्याका फल ही यहां कहते हैं] एतदर्थ मिश्रित और अमिश्रितरूप जो अपरब्रह्मकी विद्या और कर्म यह दो हैं तिनका जो कार्य है और जो गतिहै सो आपकरके कहने योग्यहै॥ तिस अर्थवाला यह प्रश्नहै ऐसा जानना योग्यहै॥ ३॥

४॥ हे सौम्य! उक्तप्रकार जब कबन्धीमुनिने सृष्टिके विषयमें अपने आचार्य पिप्पलादमुनिसे प्रश्न किया तब 'तस्मै सहोवाच' ‹ तिसके अर्थ सो स्पष्ट कहते भये › उस प्रश्न करनेवाले कबन्धीनाम मुनिको सो सर्व्वज्ञ आचार्य पिप्पलादमुनि शिष्य की शंकाके निवारणार्थ कहते भये॥ पिप्पलादउवाच॥ हे कबन्धिन् 'प्रजाकामो वै प्रजापतिः स तपोऽतप्यत' ‹ प्रजापति (ब्रह्मा) सो प्रजाकरनेकी कामनावाला हुआ तपको तपता भया › अपनी प्रजाको सृजनेकी कामनावाला प्रजापति ब्रह्मदेव सो मैं सर्वात्मा और जगत् को मैं सृजों ऐसे ज्ञानवाला और ज्ञान कर्म के समुच्चयको करनेवाला और पूर्वकल्पसम्बन्धी हिरण्यगर्भकी भावनाकरके युक्त और इस कल्पकी आदि विषे हिरण्यगर्भरूपसे सुखको प्राप्तभया और अपनी सृजीहुई स्थावर जंगमरूप प्रजाकापति हुआ पश्चात् प्रजाकी कामनावाला हुआ और जन्मान्तरविषे भावनाकिये और श्रुतिविषे प्रकाशितकिये अर्थको विषय करनेवाले ज्ञानरूप तपको 'तस्य ज्ञानमयं तपः' तपता भया, अर्थात् चित्तादिकोंसे तिसके संस्कारको जगायके उत्पन्न करता भया अर्थात् [तहां प्रथम सूर्य और चन्द्रमाकी उत्पत्तिसे तिनके

भावको पायके तिसके पश्चात् चन्द्रमा और सूर्य इन दोनों करके साधने योग्य जो संवत्सर तिससंवत्सरके भावको पायके पश्चात् ऐसेही तिससंवत्सरके अवयवरूप दक्षिण और उत्तर दोअयन और मास पक्ष दिन रात्रि इनके भावको पायके तिसके पश्चात् अयन आदिकों के क्रमसे साधने योग्य व्रीही यवादि अन्न भावको और रेतभावको पायके पश्चात् तिस रेत से प्रजाको उत्पन्नकरों ऐसे विचारके] ' स तपस्तप्त्वा ' < सो तपको तपिके > < सो प्रजापति उक्तप्रकार श्रुति उक्त अर्थके ज्ञानरूप तपको तपिके अर्थात् विचारके > ' समिथुनमुत्पादयन्ते रयिञ्च प्राणञ्चेति ' < सो रयि और प्राण इन दोनों को उत्पन्न करताभया > < प्रजापति सृष्टिके साधन रूप ' रयि ' < अर्थात् [यहां धनके वाची रयि शब्द करके भोज्य पदार्थों के समूह को लक्ष कराके और उन भोज्य पदार्थों को चन्द्रमा के किरणों के अमृतकरके युक्त होनेसे तिसद्वारा चन्द्रमा को लक्ष्य करते हैं इस अभिप्रायसे कहतेहैं]> अन्नरूप चन्द्रमा और अन्नके भोक्ता प्राण [अर्थात् 'अहं वैश्वानरो भूत्वाप्राणिनांदेहमाश्रितः । प्राणापानसमायुक्तोपचाम्यन्नंचतुर्विधम् ' < मैं वैश्वानर (जठराग्नि) रूप होके प्राणियों के देह प्रति आश्रयको पाया हौं और प्राण अपान वायु करके युक्त हुआ चार प्रकारके अन्नको पचावता हौं > इस गीता स्मृति के वाक्य प्रमाणसे अग्निको प्राणके सम्बन्ध से प्राण शब्द करके भी अग्निरूप भोक्ताही लक्ष्य करायाहै इस अभिप्रायसे यहां कहते हैं] अर्थात् प्राणरूप अग्नि (सूर्य) इन दोनों को उत्पन्न करता भया ॥ प्र० ॥ क्यों विचार के करता भया ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! यह विचारके कि ' एतौ मे बहुधा प्रजाः करिष्यत इति ' < यह दोनों मेरी बहुत प्रकार की प्रजा करेंगे ऐसे > अर्थात् यह दोनों अन्न (चन्द्रमा) और तिसका भोक्ता अग्नि (सूर्य) सो मेरी इच्छा के अनुसार अनेकप्रकार की, प्रजाको करेंगे ऐसे चिन्तनकरके ब्रह्मांड की < अर्थात् [अग्नि (सूर्य) और अन्न (चन्द्रमा)

आदित्यो ह वै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा । रयिर्वा एतत्सर्वं यन्मूर्तञ्चामूर्त्तञ्च तस्मान्मूर्तिरेव रयिः ॥ ५ ॥

को ब्रह्मांडके अन्तर्गत होने करके ब्रह्माण्डकी उत्पत्तिके अनन्तर उनकी उत्पत्ति होती है इस अभिप्रायसे यहां कहते हैं] > उत्पत्ति के क्रमसे सूर्य और चन्द्रमा को प्रजापति सृजता भया ४ ॥

५ ॥ हे सौम्य ! तिन दोनों में 'आदित्यो हवै प्राणो रयिरेव चन्द्रमा' < सूर्य्य निश्चय करके प्रसिद्ध प्राण (और) अन्नही चन्द्रमा है > अर्थात् प्रजापति से ब्रह्माण्डान्तर्गत प्रकट किये जे सूर्य और चन्द्र तिन दोनों में सूर्य्य जोहै सो निश्चय करके लोकमें प्रसिद्ध प्राणरूपहुआ अन्नका भोक्ता अग्निहै और निश्चय करके अन्नरूप चन्द्रमा है । परन्तु यह एक भोक्ता रूप और एक अन्नभोग्यरूप सो दोनों एकही प्रजापति हैं ॥ प्र० ॥ चन्द्र और सूर्य्य इन दोनों की जब प्रजापतिभाव से एकता है तब एकको भोक्तापना और दूसरे को भोग्यपना यह विषमभेद कैसे बनेगा ॥ उ० ॥ यह जो एकही प्रजापति के विषे भोग्य भोक्तारूप विषम भेद है सो गौण मुख्यभावका किया है । अर्थात् [तिस एकही प्रजापतिको ६ क्रियाशक्तिके आश्रय गौणभाव कहनेकी इच्छा से अन्न (भोग्य) पना है और 'ज्ञानशक्तिकेआश्रय' प्रधानभाव के कहनेकी इच्छासे भोक्तापना है यह भेद है] प्र० ॥ यह भेद कैसे है ॥ उ० ॥ 'रयिर्वाएतत्सर्वंयन्मूर्त्तञ्चामूर्त्तञ्चतस्मान्मूर्त्तिरेवरयिः ५' < जो मूर्त्त और अमूर्त्त है सो सर्व यह अन्नही है > अर्थात् जो स्थूल और सूक्ष्मरूप मूर्त्त और अमूर्त्त जगत् है सो सर्व यह अन्न (भोग्य) रूपही है ॥ प्र० ॥ मूर्त्तरूप अन्न और अमूर्त्तरूप भोक्ता इन दोनोंको भी जब अन्नमयता (चन्द्ररूपता) ही है तब 'रयिरेव चन्द्रमा' 'अन्नही चन्द्रमा है > ऐसा जो पूर्व वेद ने कहा सो कैसे बनेगा ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! जब मूर्त्त (अन्न) और अमूर्त्त (भोक्ता) यह दोनों विभागकरके गौण और प्रधान भावसे

अथादित्य उदयन्यत्प्राचीं दिशं प्रविशति तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते । यद्दक्षिणं यत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरादिशो यत्सर्व्वं प्रकाशयति तेन सर्व्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते ॥ ६ ॥

कहने को इच्छितहोय तब अमूर्त्तरूप (भोक्ता) प्राणसे मूर्त्तरूप (भोग्य) द्रव्यको भुक्त होनेसे मूर्त्तकोही अन्नपना है ताते पृथक् किये अमूर्त्तसे जो अन्न मूर्त्त (स्थूल) मूर्त्तिहै सोई अन्नरूप है। क्योंकि अमूर्त्त सूक्ष्मप्राणरूप भोक्ताकरके भोगाहुआहै ताते ५ ॥

६ ॥ हे सौम्य ! ताते अमूर्त्तभी प्राण भोक्ता जो अन्न है तिस सर्वरूपही है ॥ प्र० ॥ कैसे सो सर्वरूपही है ॥ उ० ॥ 'अथादित्य उदयन्यत्प्राचींदिशंप्रविशति' < अब सूर्य्य उदयहुआ जो पूर्वदिशा के अर्थ प्रवेश करताहै > तिसकरके उस पूर्वदिशाको अपने प्रकाशकरके व्याप्तकरता है 'तेन प्राच्यान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते' < तिससे पूर्वदिशाके अन्तर्गत प्राणिनकेताईं किरणों विषे प्रवेशकरता है > तिस अपनी व्याप्तिसे पूर्वदिशाके अन्तर्गत सर्व प्राणधारियों को अपने प्रकाशरूप व्यापक किरणोंविषे प्राप्त होनेसे प्रवेशकरता है । अर्थात् अपनारूप करता है । तैसेही 'यद्दक्षिणंयत्प्रतीचीं यदुदीचीं यदधो यदूर्ध्वं यदन्तरादिशो' < जो दक्षिणदिशाके अर्थ, जो पश्चिम दिशाके अर्थ, जो उत्तरदिशाके अर्थ, जो अधो, जो ऊर्ध्व, जो बीचकी दिशाके अर्थ, > जो पूर्व दिशाके अर्थ प्रवेश करता है सो तैसेही दक्षिण पश्चिम उत्तर नीचे ऊपर मध्यकी अर्थात् अग्नि ईशानादि कोणकी दिशाओं के अर्थ प्रवेश करता है । और 'यत्सर्व्वं प्रकाशयति' < जो सर्व को प्रकाशता है > जो अन्य सर्व जगत्को प्रकाशता है । और 'तेन सर्वान् प्राणान् रश्मिषु सन्निधत्ते' < तिससे सर्व प्राणियों को किरणों विषे प्रवेश करता है > तिस अपने प्रकाशकी व्याप्ति

स एष वैश्वानरो विश्वरूपः प्राणोऽग्निरुदयते । तदेतदृचाभ्युक्तम् ॥ ७ ॥

विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम् । सहस्त्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः प्राणः प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः ॥ ८ ॥

से सर्वदिशाविषे स्थित सर्व प्राणियोंको किरणोंविषे प्रवेशकरता वा धारता है ६ ॥

७ ॥ हे सौम्य ! 'स एष वैश्वानरो विश्वरूपः' < सो यह वैश्वानर विश्वरूपहै > अर्थात् सो यह भोक्ता प्राणवैश्वानर सर्वात्मा विश्वरूप है । और 'प्राणोऽग्निरुदयते' < प्राण और अग्निरूप उदय होताहै > ऽ जो वैश्वानर विश्वरूप है सो विश्व का आत्माहोने से प्राण और अग्निरूपहै और सोई भोक्ता दिन दिनविषे सर्वदिशाको अयनारूप अर्थात् प्रकाशरूप करताहुआ उदय होताहै । और 'तदेतदृचाभ्युक्तम् ७' < सो यह ऋचाने भी कहा है > सो यह कथनीय वस्तु आगे के अष्टम वाक्यमय वेदके मंत्ररूप ऋचाने भी कहाहै ७ ॥

८ ॥ हे सौम्य ! 'विश्वरूपं हरिणं जातवेदसं परायणं ज्योतिरेकं तपन्तम्' < सर्वरूप किरणोंवाला ज्ञानवान् आश्रयज्योति अद्वितीय एक तापके करनेवाले > अर्थात् सर्वरूप किरणोंवाला ज्ञानवान् सर्वप्राणका आश्रय और सो सर्वप्राणियों का चक्षुरूप ज्योति अद्वैत और तापक्रियाके करनेवाले अपने आत्मरूप सूर्य को ब्रह्मवेत्ता पण्डित जानते भये ॥ प्र० ॥ कौन यह है जिसको ब्रह्मवेत्ता पण्डित जानते भये ॥ उ० ॥ 'सहस्त्ररश्मिः शतधा वर्त्तमानः' < अनेक किरणोंवाला और अनेक प्रकारकरके वर्त्तमान > अर्थात् अनेक प्रकार प्राणियों के भेदकरके वर्त्ताहुआ । औरऽ 'प्रजानामुदयत्येष सूर्य्यः' < प्रजाओंके मध्यउदितहोता है यह सूर्य्य है > ऽप्रजा (प्राणधारि) यों के मध्य चैतन्यरूपता

संवत्सरो वै प्रजापतिस्तस्यायने दक्षिणञ्चोत्तरञ्च तद्येवै तदिष्टापूर्त्तेकृतमित्युपासते ते चान्द्रमसमेवलोकम भिजयन्ते । तएव पुनरावर्त्तन्ते तस्मादेतेऋषयःप्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते एषहवै रयिर्यः पितृयाणः ॥ ६ ॥

करके उदित (प्रकट) होता है तिसको ब्रह्मवेत्ता पंडित यह सूर्य्य है ऐसा तिसको जानते भये ८ ॥

६ ॥ हे सौम्य ! जो यह अन्नरूप मूर्त्तिमय चन्द्रमा है और अन्न का भोक्ता अमूर्त्तमय प्राणरूप सूर्य्य है सो यह एकही जोड़ा सर्व रूप है । और यह दोनों मेरी बहुत से प्रकारकी प्रजाको करेंगे ॥ प्र० ॥ कैसे करेंगे ॥ उ० ॥ चन्द्रमारूप अन्न और सूर्य्यरूप प्राण को संवत्सर आदिक द्वारा प्रजाकी उत्पत्तिका कर्तृत्वपनाहै सोई यहां वेद भगवान् कहते हैं ' संवत्सरो वै प्रजापतिः ' ‹ संवत्सर ही प्रजापति है › अर्थात् संवत्सररूप जो काल है सोई प्रजापति है । क्योंकि संवत्सर को तिस प्रजापतिकरके निर्वाह किया है ताते और जिसकरके चन्द्रमा और सूर्य्य इन दोनों से निर्वाह करनेयोग्य जो तिथि दिवस रात्रियोंका समुदायरूप जे संवत्सर हैं सो उन चन्द्र और सूर्य्य से अपृथक् होनेसे सोई रूप है । तिसकरके सो संवत्सर भी वो युगलरूपही है । ऐसे यहां कहते हैं ' तस्यायने दक्षिणञ्चोत्तरञ्च ' ‹ तिसके दक्षिण और उत्तर रूप दो अयन (मार्ग) हैं › अर्थात् तिससंवत्सररूप प्रजापतिके दक्षिण और उत्तर यह दोनों प्रसिद्ध छः छः मासरूप अयन (मार्ग) हैं और जिस दक्षिण और उत्तर मार्ग करके सूर्य जो है सो क्रम से केवल कर्मिष्ठ और उपासना करके युक्त कर्मकरनेवाले जनों के पावने योग्य लोक को पावन करता हुआ जाता है ॥ प्र० ॥ सो कैसे है ॥ उ० ॥ ' तद्ये वै तदिष्टापूर्त्तंकृतमित्युपासते ' ‹ जो ऐसे निश्चयकर तिस इष्ट और पूर्त्तरूप कृत (कर्म) को उपासते हैं › । अर्थात् केवलकर्मी और कर्म उपासनाके समुच्चय सेवन

करनेवाले जनहैं तिनमें ब्राह्मणादिकों विषे जो जन इसप्रकार निश्चय करके तिन इष्ट और पूर्त्त अर्थात् [अग्निहोत्र तप, (कृच्छ्रचान्द्रायणादि) सत्यभाषण देवतोंका आराधन अतिथि-पूजन और वैश्वदेवरूप जो कर्म हैं तिनको अथवा पंचयज्ञरूप नित्यकर्मको इष्ट कहते हैं और वापी, कूप, तड़ाग, और देवालय, अन्नदान, और देवताओं के निमित्त आरामादिक बनवावने, इत्यादि जो कर्म हैं सो पूर्त्त हैं] इत्यादि जे कर्म हैं तिसको ही उपासते (यथाविधि करते) हैं अकृत (नहीं करने योग्य) तिसको नहीं 'ते चान्द्रमसमेवलोकमभिजयन्ते' < सो चन्द्रमा विषे भये लोककोही पावते हैं > अर्थात् जो पुरुष निषिद्ध कर्मों को त्याग के इष्टापूर्तरूप कर्म को उपासते हैं सो चन्द्रमण्डल विषे उभय रूप प्रजापतिके अंशमय भोज्य (अन्न) रूप लोकों कोही पावते हैं क्योंकि चन्द्रमाविषे भये लोकोंको कर्मरूपत्व होनेसे। और 'तएव पुनरावर्त्तन्ते' < सो पुनः आवृत्ति होते हैं > अर्थात् जो पुरुष इष्टापूर्त्तादिकर्मकरके चन्द्रलोकको पावते हैं सोई पुरुष अपने पुण्यकर्मोंका भोगोंद्वारा क्षयहोनेसे पुनः जन्म मरणरूप आवृत्तिकोही पावते हैं उनका आवागमन नहीं छूटता 'तस्मादेतेऋषयः प्रजाकामा दक्षिणं प्रतिपद्यन्ते' < ताते यह ऋषि और प्रजाकामा दक्षिणायन से पावते हैं > अर्थात् चन्द्र-लोकको प्राप्त भये पुनः इस लोकविषे आवते हैं ताते यह स्वर्ग के द्रष्टा अर्थात् चन्द्रलोकके द्रष्टा क्योंकि चन्द्रलोक कोभी स्वर्गत्व है। ऋषि और प्रजाकी कामनावाले गृहस्थ सो कहे प्रकार अन्नमय प्रजापतिरूप चन्द्रमाको कर्मोंका फलरूप होने करके इष्ट और पूर्त्तरूप कर्मसे निर्वाह करते हैं। एतदर्थ अपने पुण्यकर्म रूपही दाक्षिणायन मार्ग से उपलक्षित (लखायेहुये) चन्द्रलोक-को पावते हैं और 'एष हवै रयिर्यःपितृयाणः ९' < यह पितृयान् निश्चयकरके प्रसिद्ध अन्न है > अर्थात् यह जो पितृयान करके लक्षित चन्द्रमाहै सो निश्चयकरके प्रसिद्ध अन्नहीं है ९॥

अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया विद्ययात्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते । एतद्वै प्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणमेतस्मान्न पुनरावर्त्तन्त इत्येष निरोधस्तदेष श्लोकः ॥ १० ॥

॥ १० ॥ हे सौम्य ! 'अथोत्तरेण तपसा ब्रह्मचर्य्येण श्रद्धया विद्यया' < अब उत्तरमार्गकरके तपकरके ब्रह्मचर्यकरके श्रद्धाकरके विद्याकरके > अर्थात् दक्षिणायनसे इतर जो उत्तरायणमार्ग तिस विषे जो चलनेवाले पुरुष हैं सो तप (प्राणायामादि) करके और शमदमादि लक्षणरूप ब्रह्मचर्यकरके, और विश्वास लक्षण रूप श्रद्धाकरके और विद्याकरके, अर्थात् प्रजापतिके तादात्म्यको विषयकरनेवाली अहमग्रे उपासना तिसकरके 'आत्मानमन्विष्यादित्यमभिजयन्ते' < आत्माको जानके आदित्य को पावते हैं > अर्थात् समस्त स्थावर जंगम के आत्मा और प्राणरूप सूर्य्य को 'अहमस्मि' भावसे जानके प्राणमय सर्व्वअन्नके भोक्ता सूर्य्यलोक को पावता है 'एतद्वैप्राणानामायतनमेतदमृतमभयमेतत् परायणं' < यहही प्राणोंका आश्रयहै (और) यहही अविनाशी है (और) यहही अभयहै (और) यहही परमगतिहै > अर्थात् यह ही जगदात्मा सूर्य सर्व प्राणों का समष्टिरूप आश्रय है और यह ही अविनाशी है ताहीते भयरहित अभयहै यह चन्द्रवत् वृद्धि क्षयके भयवाला नहीं । और यह केवल उपासनावाले अर्थात् पञ्चाग्निविद्या और वैश्वानर आदि विद्याकी रीतिसे अथवा प्राण सूर्य्य आदिकोंकी अहमग्रे उपासना करनेवाले और कर्म उपासनाके समुच्चय सेवनकरनेवाले पुरुषोंकी परमगतिहै क्योंकि 'एतस्मान्न पुनरावर्त्तन्ते' < इससे पुनरावृत्तिको पावते नहीं > अर्थात् जैसे उपासनासे रहित केवल कर्मकरनेवाले पुरुष चन्द्र लोक को पायके फेर इस लोक विषे आवते हैं, तैसे उपासनाके करनेवाले किंवा समुच्चय के करनेवाले सूर्य्यलोक को पायके

पञ्चपादं पितरं द्वादशाकृतिं दिव आहुः परे अर्द्धे पुरीषिणम् ॥ अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति ॥ ११ ॥

पुनरावृत्ति को पावते नहीं । और ' इत्येष निरोधः ' < ऐसे यह निरोध है > अर्थात् तिस उपासना से रहित होने करके सूर्य्य (उत्तरायण) से रोके हुये केवल कर्म करनेवाले अविद्वान् पुरुष आत्मा और प्राणमय संवत्सररूप सूर्य्यको पावते नहीं ताते इस प्रकार सोई यह संवत्सर अविद्वानों का अनावृत्ति में निरोध है । और ' तदेषः श्लोकः ' < तिस विषे यह श्लोक है > अर्थात् इस कहेहुये अर्थ विषे यह अग्रिम एकादशवां वाक्यमय श्लोकरूप वेदका मन्त्र प्रमाण है ॥ १० ॥

११ ॥ हे सौम्य ! ' पञ्चपादं ' < पञ्चपाद हैं > । अर्थात् इस संवत्सररूप सूर्य्यके पांचऋतु पादों (चरणों) वत् पांचपादहैं [दो दो मासके ऋतु यद्यपि छः हैं तथापि यहां जो श्रुतिने पांचऋतु कही है सो हेमन्त और शिशिरकी एकरूपता होनेसे कहीहै] तिन ऋतुरूप पांचपादों करके यह सूर्य्य 'जैसे चरणोंसे पुरुष' तैसे वर्त्तताहै ताते इसको पांचपादवाला कहते हैं । और ' पितरं ' < पिता है > जिसको पांचपादवाला कहते हैं तिस संवत्सररूप सूर्य्य को अन्नादि सर्व्वका जनकपना होनेसे इसको पितर कहते हैं । और ' द्वादशाकृतिं ' < बारह अवयववाला है > जो पंचपादवाला सर्वका पिता संवत्सररूप सूर्य्य है तिसके द्वादशमासात्मक षट् ऋतुरूप अवयव हैं ताते इसको द्वादशाकृति कहते हैं अथवा द्वादशमासों करके इस संवत्सररूप सूर्य्य अवयवी भावका करता होता है एतदर्थ द्वादशमासमय षट्ऋतुरूप इसके अवयवभाव में करनाहै ताते इसको द्वादशाकृति कहते हैं । और < ' परेअर्द्धे पुरीषिणम् ' < पर ऊंचे स्थानविषे जलवालाहै > > आकाशरूप अन्तरिक्षलोक से पर और ऊंचेस्थान तीसरे स्वर्ग विषे स्थितहै ताते

इसको परे अर्द्ध करके कहाहै और जलवाला है । अर्थात् 'आदित्याज्जायते वृष्टिः' इस स्मृतिके प्रमाण से । और सूर्य जब बहुत तपता है तब जलको वर्षता है यह प्रसिद्ध प्रत्यक्ष प्रमाण है ताते सूर्य्य जलवाला है ऐसे कालके वेत्ता कहतेहैं । और 'अथेमे अन्य उपरे विचक्षणं' ‹ और यह अन्यतो तिस निपुण (सर्वज्ञ) को › 'सप्तचक्रे षडर आहुरर्पितमिति' ‹ सातचक्र बिषे अर्पित है ऐसा कहते हैं › अर्थात् सात अश्वरूप अथवा ‹ सप्तग्रहरूप अश्व (क्योंकि सूर्यकेसाथ भ्रमणकरनेवाले होने से) › और षट् ऋतुवाले द्वादशमास इस निरन्तर गतिवाले कालरूप चक्रविषे 'जैसे रथकी नाभिविषे अरा अर्पित होते हैं तैसे' यह सर्व जगत् अर्पितहै ऐसा कहते हैं ॥ हे सौम्य ! जब संवत्सररूप सूर्य प्रथम पक्षविषे पांचपाद और द्वादश आकृतिवाला है और जब दूसरे पक्षविषे सप्त अश्वरूप और षट्ऋतुवाला ऐसा कहा है [तहां यह भावहै कि प्रथम पक्षविषे ऋतुओं के पादपनेकी कल्पनासे और द्वादशमासोंके अवयवपनेकी कल्पनासे सूर्यरूपकरके संवत्सररूप कालात्माही कहा । और दूसरे पक्षविषे हेमन्त और शिशिर इन दोनों ऋतुको (कि जिनको पंचपादनके वर्णन में एकरूप कहा है) भिन्न करके षट् ऋतुओं को रथचक्रगत अनेक वक्रकाष्ठरूप अरेपने की कल्पना से संवत्सर को चक्रवत् भ्रमणरूप गुणके योगसे चक्रपनेकी कल्पना करके और कालके मुख्यभावसे सर्वका आश्रय होनेकरकेभी सोई संवत्सररूप कालही कहा है । ताते इन कहेहुये दोनों पक्षमें जो भेद है सो भी गुणोंके और कल्पनाके भेदसे भेदहै कुछ कालरूप धर्मीका भेदनहीं] एतदर्थ सर्वप्रकारसे संवत्सरमय कालरूप और चन्द्रसूर्यरूप हुआ भी प्रजापतिही जगत्का कारण है ॥ ११ ॥

१२ ॥ हे सौम्य ! जिस संवत्सरविषे यह विश्व स्थितहै । अर्थात् ‹ [संवत्सरको भी मास और दिनरात्रिरूप अवयवोंवाला हुये विना ओषधी आदिकोंकी जनकताका अभावहै और पूर्व इस

मासो वै प्रजापतिस्तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः शुक्लः प्राणस्तस्मादेते ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्वन्तीतर इतरस्मिन् ॥ १२ ॥

को पिता करके कहा है ताते अब उस संवत्सरकी मास आदिक रूपताको कहते हैं] ⁊ सोई अर्थात् जो मासादि अवयवोंवाला ओषधीका पिता संवत्सर नामवाला प्रजापति अपने अवयवरूप मासोंविषे समस्त पूर्ण होताहै । ताते ८ ' मासो वै प्रजापतिः ' ‹ मासही प्रजापतिहै › ⁊ मासजो है सो अन्न और अन्नका भोक्ता इन उभयरूपवाला ' संवत्सररूपवाला ' प्रजापतिही है ८ ' तस्य कृष्णपक्ष एव रयिः ' ‹ तिसका कृष्णपक्षही अन्नहै › ⁊ अर्थात् भोग्य-भोक्ता उभयरूपवाला जो मासहै तिस मासरूप प्रजापतिका एकभाग जो कृष्णपक्षहै सोई अन्नरूप चन्द्रमाहै । और ८ 'शुक्लः प्राणः ' ‹ शुक्लपक्ष प्राणहै › ⁊ अर्थात् कृष्णपक्षसे इतर दूसरा भाग जो शुक्लपक्षहै सो प्राण और अग्निमय भोक्ता सूर्य है ' तस्मादेते ऋषयः शुक्ल इष्टिं कुर्वन्ति ' ‹ ताते यह ऋषिलोग यज्ञको शुक्लपक्षविषे करते हैं एतदर्थ › जिसकरके शुक्लपक्षरूप प्राणको सूर्य्यरूपही देखतेहैं और जिसकरके शुक्लपक्षरूप प्राणसें भिन्न जो कृष्णपक्षरूप अन्न है तिसको वे नहीं देखते । ताते ऐसे देखनेवाले जे ऋषिलोग हैं सो अपने इष्टयज्ञको कृष्णपक्षविषे करतेहुये भी शुक्लपक्षविषेही करतेहैं । और ऽ ' इतर इतरस्मिन् ' ‹ इतर इतरविषे करते हैं › ऽ प्राणके द्रष्टासे जे अन्य ऋषिलोग हैं सो तो शुक्लपक्षको सर्वात्मा प्राणरूप देखते नहीं किंतु प्राणरूपसे न देखनेरूप कृष्णपक्षके भावको प्राप्तभये कृष्णपक्षकोही देखते हैं वे ऋषि अपने इष्टयज्ञको शुक्लपक्षविषे करतेहुये भी तिससे अन्य कृष्णपक्षविषेही करते हैं ॥ १२ ॥

१३ ॥ हे सौम्य ! बारहवें मन्त्रसे कहाजो मासरूप प्रजापति सो भी अपने अवयवरूप दिन और रात्रि विषेही पूर्ण होताहै

अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते ब्रह्मचर्य्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते ॥ १३ ॥

एतदर्थ सो 'अहोरात्रो वै प्रजापतिस्तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः' < दिनरात्रि निश्चय प्रजापति है तिसका दिवसही प्राणहै (और) रात्रिही अन्न है > अर्थात् दिनरात्रिरूप जो एक प्रजापति है तिसका भी दिवसहै । सोई प्राण और अग्निरूप अन्नका भोक्ता सूर्य्यहै और रात्रि जो है सोई अन्नरूप भोग्य चन्द्रमाहै । और ८ 'प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते' < जो दिवसमें मैथुनको करते हैं सो दिवसरूप प्राणको खोवते हैं > जो पुरुष अपनी अविवेकताके वशभये दिवसमें प्रीतिके कारण स्त्री तिसके साथ मैथुनकर्म को करते हैं सो पुरुष दिवसरूप प्राणको खोवते हैं । हे सौम्य ! जब यह ऐसेहै तब दिनमें मैथुनकर्म करने योग्य नहीं । इसप्रकार जो दिवसमें मैथुनका निषेध कहाहै सो प्रासंगिकै कहाहै । और ८ 'ब्रह्मचर्य्यमेव तद्यद्रात्रौ रत्या संयुज्यन्ते' < जो रात्रिबिषे मैथुनको करते हैं सो ब्रह्मचर्य्यही हैं > जो विवेकी पुरुषहैं सो ऋतुकालमें भी रात्रि के समयही अपनी स्त्रीके साथ मैथुनकर्मको करते हैं सो उनका ब्रह्मचर्य्यही है । सो श्रेष्ठहै ताते ऋतुकालमें रात्रिविषेही स्त्री से संयोग करने योग्यहै । हे सौम्य ! यह ऋतुगमनकी विधि जो कही है सो भी प्रासंगिकही कही है । अब जो प्रसंग पूर्वसे चला है तिसको श्रवण करो यह जो दिवस रात्रिरूप प्रजापति कहा है सो व्रीहि (धान्य) यवादि अन्नरूपसे स्थित भया है ॥ १३ ॥

१४ ॥ हे सौम्य ! इस कहे प्रकार क्रमकरके दिनरात्रिरूप प्रजापति अन्नविषे परिसमाप्त होता है एतदर्थ 'अन्नं वै प्रजापतिः' < अन्नभी प्रजापति है > ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! तिस अन्नको प्रजोत्पादनपना कैसे है ॥ उ० ॥ 'ततो ह वै तद्रेतः' < ताते

अन्नं वै प्रजापतिस्ततो ह वै तद्रेतस्तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति ॥ १४ ॥

प्रसिद्धही रेत होता है ›अर्थात् भोजन किया जो अन्नहै तिस अन्नसे सर्वलोक विख्यात मनुष्यका बीजरूप रेत (वीर्य) होता है‹ [यहां पुरुषके वीर्यका वाची रेत शब्द है सो स्त्री के रजरूप शोणित के भी ग्रहणार्थ में है। क्योंकि वीर्यरूपता करके दोनों को तुल्यत्व है ताते] ›सो प्रजाका कारण है‹ 'तस्मादिमाः प्रजाः प्रजायन्त इति' ‹तिससे यह प्रजा उत्पन्न होती है›› अर्थात् तिस अन्नके परिणाम रेतसे यह मनुष्यादि प्रजा भलीप्रकारसे उत्पन्न होती है ॥ १४ ॥ हे सौम्य! हे कबन्धिन्! तैंने जो प्रश्न कियाथा कि 'कुतोह वा इमाः प्रजाः प्रजायन्ते' ‹किससे यह प्रजा उत्पन्न होती है› सो उक्तप्रकार दिनरात्रिपर्यन्त चन्द्रसूर्य्य रूप दोनों आदिकके क्रमसे अन्नरूप रेतद्वारा सर्वप्रजा उपजे हैं ऐसा श्रुतिने निर्णय किया ॥ १४ ॥

१५ ॥ हे सौम्य! जब श्रुतिके सिद्धान्त से उक्तप्रकार है तब 'तद्येह तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति' ‹जो प्रसिद्ध तिस प्रजापतिके व्रतको करता है›। अर्थात् श्रुति सिद्धान्तप्रमाण जो प्रसिद्ध गृहस्थ है सो तिस ऋतुकालविषे कि, श्रुतिशास्त्राचार्योंने नियम किया है, स्त्रीसहगमनरूप प्रजापति नामक व्रत तिसको करते हैं‹ 'ते मिथुनमुत्पादयन्ते' ‹सो दोको उपजावते हैं›› अर्थात् जो पुरुष उक्तलक्षणवाले प्रजापति के व्रतको करते हैं सो पुत्रको पुत्रीरूप जोड़ेको उपजावते हैं। यह उनको अदृष्टफल है और चन्द्रमण्डलरूप ब्रह्मलोक उनको अदृष्टफलहै ॥ प्र० ॥ हे भगवन्! जब केवल ऋतुकालमें भार्यागमनरूप प्रजापति व्रत के आचरणमात्रसेही चन्द्रमण्डलरूप अदृष्ट फलकी प्राप्ति होती है तब इस व्रतवाले जो मूर्ख पुरुष हैं कि जो तपादिक नहीं जानते तिनकोभी उक्तफलकी प्राप्ति होगी ॥ उ० ॥ हे सौम्य! तपादि

तद्ये ह वै तत्प्रजापतिव्रतं चरन्ति ते मिथुनमुत्पादय-न्ते । तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्य्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ॥ १५ ॥

साधन रहित केवल यथाविधि ऋतुकाल में भार्यागमन मात्र प्रजापतिव्रत के करने से चन्द्रलोकरूप ब्रह्मलोककी प्राप्ति नहीं किन्तु ' तेषामेवैष ब्रह्मलोको येषां तपो ब्रह्मचर्य्यं येषु सत्यं प्रतिष्ठितम् ' < जिनको तप ब्रह्मचर्य्य है और जिनविषे सत्य वर्त्तता है तिनकोही यह ब्रह्मलोक है > अर्थात् जिन पुरुषों को कृच्छ्रादि तप, बारहवर्षतक पढ़ेहुये वेदकी समाप्तिरूप स्नातक व्रतादि और ऋतुकाल विषे और अन्यकालविषे मैथुनका असमान आचरणरूप ब्रह्मचर्य्य है । और जिनविषे मिथ्याभाषणका त्यागरूप सत्य अव्यभिचारतासे वर्त्तता है । अर्थात् जो गृहस्थ पुरुष यथासमय कृच्छ्रचान्द्रायणादि व्रतरूप तपको करते हैं और परस्त्रीगमन के त्यागपूर्वक केवल ऋतुकालमेंही स्वभार्या गमनरूप ब्रह्मचर्यको करते हैं और जिनविषे असत्य भाषण का त्यागरूप सत्य निरन्तर वर्त्तता है । ऐसे जे इष्टापूर्त्तादि धर्माचरण पूर्वक प्रजापतिव्रतरूप दक्षिणायन मार्गके चलनेवाले पुरुषहैं तिनहीं को यह चन्द्रमण्डलविषे पितृयाणरूप ब्रह्मलोककी प्राप्तिरूप अदृष्टफल हैं ॥ १५ ॥

१६ ॥ हे सौम्य ! अब और श्रवण करो जो शुद्धहै अर्थात् चन्द्रमा के ब्रह्मलोकवत् मलरहित और वृद्धिक्षयादिक दोषकरके युक्त नहीं और सूर्यकरके उपलक्षित उत्तरायणरूप प्राणका आत्मभाव, अर्थात् सो सर्वका भोक्ता प्रजापति प्राण मैं हौं ऐसा भाव है यह तिनका है ॥ प्र० ॥ हे भगवन् ! यह किनका है ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! ' न येषु जिह्ममनृतं न माया च ' < जिन बिषे कुटिल भाव और असत्य नहीं पुनः माया नहीं > अर्थात् जैसे गृहस्थ पुरुषोंको अनेक विरुद्ध व्यवहारिक प्रयोजनवाला होनेसे कुटिल

तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको न येषु जिह्ममनृतं न माया चेति ॥ १६ ॥

इति प्रश्नोपनिषद्गतः प्रथमप्रश्नः ॥ १ ॥

भाव अवश्य होता है तैसे जिनपुरुषों विषे कुटिलभाव नहीं। और जैसे गृहस्थ पुरुषको क्रीड़ा (रमण) हास्यादि व्यवहारके समय असत्यभाषण निषेध करनेयोग्य नहीं। तैसे जिनपुरुषों विषे क्रीड़ाआदिक व्यवहार के अभावसे सो तन्निमित्तक असत्य भी नहीं और जिनपुषों विषे गृहस्थोंवत् माया अर्थात् कपट अथवा असत्यादि दोषोंवत् अन्य दोष नहीं। हे सौम्य! इसप्रकार जिन ब्रह्मचारी वानप्रस्थ और संन्यासीरूप ८ [यहां संन्यासीपद करके परमहंसों से इतर जे कुटीचक बहूदकादि हैं तिन्हों का ग्रहण है क्योंकि उन परमहंसोंको ब्रह्मलोकसे भी अशेष वैराग्य है ताते] ? अधिकारियों विषे क्रीड़ादि निमित्तों के अभाव से असत्यादि दोष नहीं ८ 'तेषामसौ विरजो ब्रह्मलोको' < तिन का यह निर्मल ब्रह्मलोक है > ? अर्थात् जिनपुरुषोंमें क्रीड़ादि निमित्तके अभावसे असत्यादि दोषोंका भी अभाव है तिनपुरुषों का निर्मल साधनोंके अनुसार यह रजतमादि दोषरहित निर्मल ब्रह्मलोकहै 'इति' < ऐसी > यह प्राणादिकोंकी उपासनासहित इष्टापूर्त्तादि कर्म करनेवालेकी उत्तरायणरूप गतिहै और पूर्वकहा जो चन्द्रलोकरूपी ब्रह्मलोककी प्राप्ति सो केवल कर्मके करने वाले जनोंकी दक्षिणायन गति है ॥ १६ ॥

प्रश्नोपनिषद्के प्रथमप्रश्न की भाषाटीका समाप्त हुई।

अथ प्रश्नोपनिषद्गतोद्वितीयप्रश्नः ।

ॐ अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते कतर एतत् प्रकाशयन्ते कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ॥ १ । १७ ॥

प्रश्नोपनिषद्के द्वितीय प्रश्न की भाषाटीका का प्रारम्भ ।

हे सौम्य ! [अब यहांसे अन्य द्वितीय और तृतीय इन दो प्रश्नोंके कहेहुये प्रथम प्रश्नसे जो सम्बन्धहै सोकहते हैं । प्रथमप्रश्न विषे प्राणको भोक्ता और प्रजापति कहाहै तहां प्राणको जे श्रेष्ठपना भोक्तापना प्रजापतित्वपना कहाहै तिन आदिगुणोंके निर्धारणार्थ यह द्वितीय प्रश्नहै क्योंकि ' अत्ता विश्वस्य सत्पतिः ' < भोक्ता जो है सो विश्वका श्रेष्ठ पति है > ऐसा इस द्वितीय प्रश्नके ११ वें वाक्यसे कहा है और ' एषोऽग्निस्तपति ' < यह अग्निरूप हुआ तपताहै > यह इस द्वितीय प्रश्नके पांचवें वाक्यसे आरंभ करके ' अराइव रथनाभौ प्राणे सर्व्वं प्रतिष्ठितं ' < रथकी नाभि विषे अराओंवत् प्राणविषे सर्व यह स्थित है > इस षष्ठवाक्यसे और ' प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे ' < प्रजापतिरूप तूही गर्भविषे विचरताहै और माता पिताके तुल्यहुआ जन्मता है > इस सप्तमवाक्यसे प्राणको प्रजापति आदि प्रतिपादन किया है तातें प्राणका प्रजापतित्वपना और अन्नका भोक्तापना निश्चय करने योग्यही है । और यह प्रजापतिपनेका और भोक्तापनेका जो कथन है सो प्राणके अन्य गुणोंका उपलक्षणहै । यहां यह भाव है कि प्रथम प्रश्नविषे कहीगई जे कर्म उपासनाकी गति तिसके श्रवणसे वैराग्यशीलभये पुरुषकोभी चित्तकी एकाग्रता (वृत्तियों निरोध) भये विना आगे आत्मतत्त्वके श्रवणकी असिद्धताहै

ताते उन पुरुषों के अर्थ प्राणकी उपासना के लिये अब द्वितीय और तृतीय इन दोनों प्रश्नोंका आरंभहै। तिनमें भी प्राणकेज्येष्ठ-श्रेष्ठत्वपने और भोक्तापनेके और प्रजापति आदि गुणों के निर्ण-यार्थ द्वितीयप्रश्नहै। और तिस प्राणकी उत्पत्त्यादिकों के निर्णय पूर्वकतिसकी उपासनाके विधानार्थ तृतीयप्रश्नहै यहभी जानना]॥

१॥ हे सौम्य! प्रथम प्रश्नविषे 'प्राणोऽत्ता प्रजापतिः' ऐसा कहाहै। ताते अब उस प्राणका भोक्तापना और प्रजापतिपना यह दोनों इसही शरीरविषे निश्चयकरनेको योग्यहैं इस अर्थ के जतावने के अर्थ इस द्वितीय प्रश्नका आरंभ करते हैं 'अथ हैनं भार्गवो वैदर्भिः पप्रच्छ' < अनन्तर इसको निश्चय करके विदर्भ देशका निवासी भार्गव प्रसिद्ध पूछताभया > अर्थात् कबन्धीमुनि के प्रश्न समाप्त होने के पश्चात् इस सर्व्वज्ञ पिप्पलादमुनिको उनके वाक्यमें निश्चयपूर्वक विदर्भदेशका निवासी भार्गवनाम वाला मुनि सर्वमें प्रसिद्ध जे प्राण तिस विषयक प्रश्न करता भया कि 'भगवन् कत्येव देवाः प्रजां विधारयन्ते' < हे भगवन्! कितनेही देवता प्रजाको विशेष करके धारणकरे हैं > अर्थात् हे भगवन्! आकाशादि पांच भूत और चक्षुरादि पांच ज्ञानेंद्रियां और वागादि पांच कर्मेंद्रियां और मन और प्राण यह सप्तदश तत्त्वात्मक लिंगा-भिमानि प्रत्येक तत्त्वके मिलके सप्तदश देवता हैं तिन विषे कितने देवता इन शरीररूप प्रजाको < [यहां प्रजा शब्दका अर्थ शरीर ही ग्रहणकरने योग्यहै जीव नहीं क्योंकि जीवको प्राणधारित्व-पना है एतदर्थ प्राण इन्द्रियों करके जीव धारण करने योग्यनहीं ताते यहां प्राणकरके धारण करने योग्य शरीररूप प्रजाही है] > धारते हैं। और < 'कतरएतत् प्रकाशयन्ते' < कितने इसको प्रकाश करते हैं > > अर्थात् ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय करके पृथक् २ भावको प्राप्तभये जे देवता तिनके मध्य कौन से दे-वता इस अपने माहात्म्य के प्रकटकरने रूप प्रकाशको करते हैं अर्थात् ['प्राकं पचतीति' < पाकको पचता है > तद्वत् अव-

तस्मै सहोवाचाकाशो हवा एष देवो वायुरग्निराप: पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च । ते प्रकाश्याभिवदन्ति वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयाम ॥ २ । १८ ॥

काशके देने आदिक और अवलोकन आदिक जो आकाशादि भूतों का और इन्द्रियरूप देवताओं का जो अपना अपना माहात्म्य है तिसको लोकों विषे प्रकटकरने रूप प्रकाशको कौन से देवता करते हैं] और ८ ' कः पुनरेषां वरिष्ठ इति ' ९ पुनः इनके मध्य श्रेष्ठ कौनहै ? ७ फेर इन कार्य कारणरूप पूर्वोक्त सप्तदश देवताओंके मध्य अतिशय कीर्त्तिवाला और श्रेष्ठ देव कौन है ॥ १ । १७ ॥

२ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार जब पिप्पलाद मुनि से प्रश्न किया तब ' तस्मै स होवाच ' < तिसको सो स्पष्ट कहतेभये > अर्थात् तिस प्रश्नकर्त्ता भार्गवमुनिके अर्थ सो पिप्पलादनामा मुनीश्वर आचार्य प्रसिद्ध कहतेभये कि हे भार्गव ! 'आकाशो हवा एष देवो वायुरग्निरापः पृथिवी वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च' < आकाश प्रसिद्ध यह देवहै वायु, अग्नि, जल, पृथिवी, वाक्, मन, चक्षु, श्रोत्र, (यह देवहैं) > अर्थात् आकाश प्रसिद्ध यह देवहै [यहां यह देव ऐसा जो कहाहै सो आगे कहने के कथन आदि व्यवहार की सिद्ध्यर्थ और चेतनपने की ' यह चेतनहै ' इस सम्भावनाके अर्थ यहां ' देव ' विशेषणहै । और ' देव ' इस पदसे जो अभिमानी का कथन है सो तो आकाशादिकों के अभिमानी देवताओं के ग्रहणार्थ है अन्य देवताओं के ग्रहणार्थ नहीं । तातें यहां ' देव ' इस विशेषण का वायु आदिकोंसे भी सम्बन्ध है] वायुदेव है, अग्नि देवहै, जल देवहै, पृथिवी देवहै, वाणी उपलक्षणकरके पांच कर्मेंद्रियां देवहैं, मन उपलक्षण करके वृत्तिचतुष्टयात्मक अन्तःकरण देवहै, चक्षु और श्रोत्र इन उपलक्षणकरके पांच ज्ञानेंद्रियां यह देवहैं । अर्थात् शरीर को आरम्भ करनेवाले आकाशादि पांच भूत और वाणी औरमन औरचक्षु और श्रोत्र इत्यादि सर्व ज्ञानेन्द्रियां और

तान् वरिष्ठः प्राण उवाच । मामोहमापद्यथाऽहमेवैतत्पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्यैतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति ॥ ३ । १९ ॥

कर्मेंद्रियां और अन्तःकरणरूप 'देव' शरीर को धारण करते हैं, तिन देवताओं के मध्य पांच कर्मेंद्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियांरूप जो देवहैं सो अपने माहात्म्य को प्रकटकरनेरूप (दर्शनश्रवणादि रूप) कार्यको करतेहैं । और कार्यरूपदेव और करणरूपदेव अर्थात् [देहाकारसे परिणाम को प्राप्तभये जे आकाशादि पञ्चमहाभूत सो कार्यरूप देवताहैं और ज्ञानेंद्रियां और कर्मेंद्रियां यह करणरूप देवहैं] 'ते प्रकाश्याभिवदन्ति' सो देव प्रकाशकरके कहते भये अर्थात् सो देव अपने माहात्म्यको प्रकाशकरके अपने बिषे श्रेष्ठत्वका अभिमानकरके परस्पर ईर्षाको करतेहुये कहते भये ॥ प्र० ॥ क्या कहते भये ॥ उ० ॥ 'वयमेतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामि' हम इस शरीरको अशिथिलकरके स्पष्ट धारतेहैं (ऐसे कहतेभये) अर्थात् जैसे प्रासाद (बड़े ऊँचे गृह) को स्तम्भ धारते हैं तैसे हम इस कार्य कारणात्मक संघातरूप शरीर को शिथिलाकिये विनाही स्पष्ट धारते हैं, इसप्रकार अपने २ बिषे महत्त्वपनेका अभिमानकरके इन्द्रियरूप देवता परस्पर कहतेभये २ । १८ ॥ हे सौम्य ! इन्द्रियों का परस्पर और प्राणका जो संवाद और प्राणको सर्व में एक ज्येष्ठ श्रेष्ठपना यह छान्दोग्य उपनिषद्के चतुर्थ प्रपाठक में एक आख्यायिकारूपसे सविस्तर कहाहै ॥ २ ॥ ३ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार साभिमानहुये अपने २ श्रेष्ठत्वके अर्थ ईर्षापूर्वक परस्पर में विवाद करते जे देवता 'तान् वरिष्ठः प्राण उवाच' तिनको मुख्य प्राण कहताभया अर्थात् तिन असत्य अभिमान करनेवाले इन्द्रियांरूप देवोंको सर्वमें मुख्यदेव जो प्राण सो कहताभया कि 'मा मोहमापद्यथा' मोहको मत प्राप्तहो अविवेकता के वश भये इस असत्य अभिमानको

तेऽश्रद्दधाना बभूवुः सोऽभिमानादूर्द्ध्वमुत्क्रमत इव तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व एवोत्क्रामन्ते तस्मिꣳश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्वे एव प्रतिष्ठन्ते तद्यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्व्वा एवोत्क्रामन्ते तस्मिꣳश्च प्रतिष्ठमाने सर्व्वा एव प्रातिष्ठन्त एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति ॥ ४ । २० ॥

मतकरो । देखो 'अहमेवैतत् पञ्चधाऽऽत्मानं प्रविभज्य' > मैंहीं इस अपने आपको पांच प्रकारसे विभागकरके >, मैंहीं इसअपने आपको, अपानादि भेदसे पांच प्रकार होयके < "एतद्बाणमवष्टभ्य विधारयामीति " < इस शरीरको अशिथिलकरके स्पष्टधारता हौं > ? इस कार्य कारणात्मक संघातरूप शरीर को शिथिल न करके स्पष्ट धारताहौं ताते तुम व्यर्थ अभिमान मतकरो॥ ३।१६॥

४ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार जब प्राणने सर्व इन्द्रियों से कहा तव ' ते अश्रद्दधाना बभूवुः ' < वे अश्रद्धावान् होते भये > अर्थात् सो इन्द्रियरूप देवता विचारकरतेभये कि जो यह प्राण कहता है कि मैं पांचप्रकार होयके इस शरीरको धारता हौं सो असंभवहे । इसप्रकार प्राणके वाक्यमें अविश्वासवान् होते भये तव ' सोभिमानादूर्द्ध्वमुत्क्रमत इव ' < सो अभिमान से ऊंचे गमनकरतेहुयेवत् > अर्थात् सो प्राण तिन इन्द्रियरूप देवतों के अपनेवाक्य में अविश्वासको देख आप अभिमानसे ऊंचे को जातेहुयेवत् होताभया अर्थात् रोष (क्रोध) सहित इन्द्रियों की अपेक्षाके रहित हुआ इस संघातरूप शरीरको त्यागताभया हे सौम्य ! उक्तप्रकार इस शरीरसे प्राणके निकसजाने से जो वृत्तान्त हुआ तिसको अब वेद दृष्टान्तसे स्पष्ट करे हैं ' तस्मिन्नुत्क्रामत्यथेतरे सर्व्वे एवोत्क्रामन्ते तस्मिꣳश्च प्रातिष्ठमाने सर्व्वे एव प्रतिष्ठन्ते ' > तिसके निकसने से पीछे अन्य सर्वही जाते भये पुनः तिसके स्थितहुये सर्वही स्थित होतेभये > अर्थात् तिस

एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एष पर्जन्यो मघवानेष वायुरेष पृथिवी। रयिर्देवः सदसच्चाऽमृतञ्च यत्॥५।२१॥

प्राण के शरीर से निकसने पीछे और सर्व चक्षुरादि इन्द्रियां भी जाते भये और पुनः तिस प्राणके तूष्णीं (चुप) होके बैठने से सर्वही तूष्णीं होके बैठतेभये॥ दृष्टान्त 'यथा मक्षिका मधुकरराजानमुत्क्रामन्तं सर्व्वा एवोत्क्रामन्ते' <जैसे मक्षिका मधुकर राजाके निकसिजाने से सर्वही निकलजाते हैं> अर्थात् जैसे मधु (शहद) की मक्खी अपने राजा मक्खीके निकलजाने से सर्वही उस स्थान को त्याग के निकलजाती हैं। और 'तस्मिंश्चप्रतिष्ठमाने सर्व्वा एव प्रातिष्ठन्त' <तिसके स्थित हुये सर्वही स्थित होते हैं> अर्थात् तिस मधुकरराजा मक्खी के स्थित हुये अन्य सर्व मक्खी स्थित होतीहैं। हे सौम्य! जैसे यह उक्त दृष्टान्त है 'एवं वाङ्मनश्चक्षुः श्रोत्रञ्च ते प्रीताः प्राणं स्तुन्वन्ति' <ऐसे वाणी (कर्मेंद्रियां) मन, चक्षु और श्रोत्र, (ज्ञानेन्द्रियां) सो प्रीतिसे प्राणकी स्तुति करतेभये> अर्थात् उक्त दृष्टान्तप्रमाण वाणी मन चक्षु आदि सर्व इन्द्रियांरूप देव प्राण के माहात्म्य को जान तिस विषे प्रतीतवान् होय अपने असत्य महत्त्व के अभिमान को त्याग प्रसन्नतापूर्वक प्राण की स्तुति करते भये॥ ४। २०॥

५॥ हे सौम्य! इन्द्रियां कहतीहैं कि 'एषोऽग्निस्तपत्येष सूर्य्य एष पर्जन्यो' <यह अग्नि हुआ तपताहै यह सूर्य्यहै यह मेघहै> अर्थात् यह प्राण अग्निरूप हुआ तपताहै, तैसे यह सूर्य्यरूपहुआ प्रकाशताहै, तैसे यह मेघरूप हुआ वर्षा करताहै। और 'मघवानेष वायुरेष पृथिवी रयिर्देवः सदसच्चामृतञ्च यत्' <यह इन्द्रहै, यह वायु है, यह पृथिवी है, यह चन्द्रदेव है, सत्, असत् और अमृत जो है, (सो सर्व प्राणही है)> यह इन्द्र होयके प्रजाका पालन करता है, और असुर राक्षसों का नाश करता है, और यह

अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् । ऋचो यजुꣳषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्म च ॥ ६ । २२ ॥

आवह (उड़ायके लेजानेवाला) और प्रवाह (वेगसे चलनेवाला) आदिक सात गुणोंके भेदसे भेदवालाहुआ वायु मेघ और नक्षत्रादिकों को भ्रमावताहै, और यह पृथिवीरूप होके सर्वको धारताहै। और यह देव चन्द्रमा होयके ओषधि आदिकोंका पोषण करताहै। हे सौम्य! विशेष क्या कहिये सत् कहिये सूक्ष्म अमूर्त्त और असत् कहिये स्थूल मूर्त्त और देवताओं की स्थितिका कारणभूत जो अमृत है सो भी प्राणही है ॥ ५ । २१ ॥

६ ॥ हे सौम्य! पुनः इन्द्रियांरूप देवता विचार करते भये कि 'अरा इव रथनाभौ प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम्' < रथकी नाभि विषे अरान्वत् प्राणविषे सर्व स्थितहै > अर्थात् जैसे रथके चक्र (पहिया) के मध्य काष्ठको रथनाभि कहते हैं तिसविषे अरा (खड़ीलकड़ियां) स्थित होती हैं। तैसे इस उपनिषद् के षष्ठ प्रश्नके 'प्राणाच्छ्रद्धा खं वायुर्ज्योतिः' इत्यादि। < प्राणसे श्रद्धा आकाश वायु तेज > इत्यादिकों को सृजताभया इस चतुर्थवाक्य प्रमाण श्रद्धा आदिले नामपर्यंत सर्वका संघातरूप शरीर अपनी स्थितिकालमें प्राण बिषे स्थितहैं। और तैसेही 'ऋचो यजुꣳषि सामानि यज्ञः क्षत्रं ब्रह्मच' < ऋग्वेद यजुर्वेद सामवेद और यज्ञ क्षत्रिय और ब्राह्मण > अर्थात् जैसे श्रद्धा आदिक कला प्राणविषे स्थितहैं; तैसे ऋग् यजु साम यह तीन वेदके तीन प्रकार के मन्त्र, और तिन मन्त्रों करके साधने योग्य अश्वमेधादि यज्ञ, और सर्वके पालन कर्त्ता और दंड के दाता क्षत्रिय जाति राजा, और यज्ञादिक वैदिक कर्मोंके कर्ताओं में मुख्य अधिकारी सर्वोत्तम ब्राह्मणजाति; यह सर्व प्राणके आश्रय होनेसे प्राणही हैं ॥ ६ । २२ ॥

७ ॥ हे सौम्य! दो मन्त्रसे कहेप्रकार विचारके सर्व इन्द्रियां प्राणकी स्तुति करतीभई 'प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रति-

प्रजापतिश्चरसि गर्भे त्वमेव प्रतिजायसे तुभ्यं प्राण: प्रजास्त्विमा बलीं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि ॥ ७। २३ ॥

देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा। ऋषिणाञ्चरितं सत्यमथर्वाङ्गिरसामासि ॥ ८। २४॥

जायसे' ८ जो प्रजापतिहै सो तूही है, गर्भविषे बिचरता है और सदृशहुआ जन्मता है › अर्थात् कहतीभई कि हे प्राण! जो सर्व का प्रजापतिहै सोभी तूही है और पिताके गर्भ में वीर्यरूपसे और माताके गर्भविषे पुत्ररूपसे जो बिचरता है और जो माता पिता केही सदृशहुआ जन्मताहै सो तूही जन्मताहै, अर्थात् हे प्राण! तुझको सर्वरूप प्रजापति होने से तेरा माता पितापना प्रथमही सिद्धहै, एतदर्थ तू सर्व देह और सर्व देहवालों के आकारों से ढकाहुआ एक प्राणरूप सर्वात्मा है। और ८ 'तुभ्यं प्राणः प्रजास्त्विमा बलीं हरन्ति यः प्राणैः प्रतितिष्ठसि' ८ हे प्राण! यह प्रजा तो तेरेअर्थ बलि देते हैं जो प्राणोंके साथ सर्व शरीरोंप्रति स्थितहै › हे प्राण! यह मनुष्यादि सर्व प्रजा सो चक्षुरादिद्वारा रूपादि विषयरूप बलिदान (कर) तेरेही अर्थ देते हैं, क्योंकि जो तू चक्षुरादि इन्द्रियोंके साथ मिलके और उन सर्व को अपने आश्रय धारके सर्वका भोक्ताहुआ सर्व शरीरों बिषे स्थितहै, एतदर्थसर्व तेरेही अर्थ बलिदान(कर) देतेहैं। इतिसिद्धम्॥ ७। २३ ॥

८ ॥ हे सौम्य! पुनः इन्द्रियां कहती हैं कि हे प्राण! 'देवानामसि वह्नितमः पितॄणां प्रथमा स्वधा' ८ देवताओं के मध्य वह्नितम है पितरों की प्रथम स्वधा है › अर्थात् इन्द्रादि देवताओं के मध्य तू ,वह्नितम, कहिये अतिशय करके हवन किये द्रव्यों को प्राप्त करनेवाला है। और पितरों के नांदीमुखश्राद्ध बिषे (जो कि शुभ कार्यमें होता है) जो स्वधारूप अन्न है सो देवताओं के निमित्त हवनद्रव्य देनेसे प्रथम होताहै एतदर्थ पितरों

इन्द्रस्त्वं प्राण तेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता । त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्य्यस्त्वं ज्योतिषांपतिः ॥ ९ । २५ ॥

के अर्थ प्रथम जो स्वधा सो तू है । अर्थात् पितरों के अर्थ स्वधान्नका प्राप्त करनेवाला तू है । और ' ऋषिणाञ्चरितं सत्यमथर्वांगिरसामसि ' < इन्द्रियों का अंगिरसरूप अथर्वणनाम वाले (भये) ऋषियों (इन्द्रियों) का चरितसत्य (तूही है) > अर्थात् चक्षुरादि इन्द्रियरूप अंगिरस < [अथर्वण नामवाले हुयेभी उन ऋषियों का] > अर्थात् „ऋष„ जो धातुहै सो गति (ज्ञान) रूप अर्थ विषे वर्त्तता है । एतदर्थ ऋषिपदका ज्ञान के जनक चक्षुरादिक इन्द्रियरूप अर्थ है और इन्द्रियरूप प्राणके अभाव हुये अंगों के रसका शोषण होता देखने से उन इन्द्रियरूप प्राणोंको अंगिरसपना है । और ' प्राणो वा अथर्वा इति श्रुतिः ' < प्राण वा अथर्वा है > इस श्रुतिके प्रमाण से तिन इन्द्रियोंको अथर्वापना है । यद्यपि मुख्यप्राण का अथर्वापना श्रुतिने कहाहै, तथापि चक्षुरादि इन्द्रियों को भी उस मुख्यप्राण के अंशरूप होनेसे अथर्व शब्दका अथर्वान् „यह बहुतपनाहै, [इतिभावः] चरित और देह धारणादिक विषे उपकार करनेरूप सत्य तूही है ॥ ८ । २४ ॥

९ ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां कहतीभई कि ' इन्द्रस्त्वं प्राणतेजसा रुद्रोऽसि परिरक्षिता ' < हे प्राण ! इन्द्र तू है, रुद्र तू है, रक्षाकरने वाला तू है > अर्थात् हे प्राण ! वीर्य (सामर्थ्य) करके इन्द्र (परमेश्वर) तू है, अथवा < हे प्राण ! अपने सामर्थ्य करके सर्व देवताओं का अधिपति इन्द्र तू है > और संहारकरने के सामर्थ्य से जगत् का हरण करनेवाला रूप तूही है, और स्थितिकाल विषे सौम्यरूप हुआ जगत्का पालक विष्णु भी तूही है । और ' त्वमन्तरिक्षे चरसि सूर्य्यस्त्वं ज्योतिषांपतिः ' < तू अन्तरिक्षविषे विचरता है (और) ज्योतियों का पति सूर्य्य तूही है > अन्तरिक्षादि आकाश विषे निरन्तर विचरनेवाला तूही है । और उदय और

यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाःप्राणते प्रजाः। आनन्दरूपा-स्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्यतीति ॥ १० । २६ ॥

व्रात्यस्त्वं प्राणैक ऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः। व-यमाद्यस्य दातारः पिता त्वं मातरिश्वनः ॥ ११ । २७ ॥

अस्त होनेवाले सर्व ज्योतिगणों का अधिपति सूर्य तूही है ॥ इति सिद्धम् ॥ ९ । २५ ॥

१० ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां कहती भई कि । हे प्राण ! ' यदात्वमभिवर्षस्यथेमाः प्राणते प्रजाः ' < जब तू वर्षता है तब यह प्रजा प्राणकी (चेष्टाकरे है) > अर्थात् जब तू मेघ होयके वर्षा करता है तब अन्न को पाय के यह प्रजा प्राण की चेष्टाको करे है । अथवा ' यदा त्वमभिवर्षस्यथेमाः प्रजाः ' < हे प्राण ! तेरी यह प्रजा तेरे अन्नसे वृद्धिको पाईहुई और तेरी वर्षा के देखनेमात्रसेही > ' आनन्दरूपास्तिष्ठन्ति कामायान्नं भविष्य-तीति ' < आनन्दरूप स्थित है यथेष्ट अन्न होगा > आनन्दको प्राप्त भये स्थितहै, क्योंकि यथेष्ट (इच्छाके अनुसार)अन्नहोगा॥ ऐसा तिस वर्षा के देखनेवाली प्रजा का अभिप्राय है ॥ इति सिद्धम् ॥ १० । २६ ॥

११ ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां कहतीभई कि ' व्रात्यस्त्वं प्राणैकऋषिरत्ता विश्वस्य सत्पतिः ' < हे प्राण ! व्रात्य तू है एक-र्षिहुआ भोक्ता तू है > अर्थात् हे प्राण ! ' एतस्माज्जायते प्राणः ' तुझको प्रथम उत्पन्न होनेसे तुझसे पूर्व तेरा संस्कार करनेवाला अन्य कोई नहीं ताते तू संस्कार रहित व्रात्य (असंस्कारी) है और (जो ऐसा कहे कि जिससे प्राण उत्पन्नभयाहै सोई उसका संस्कार करनेवालाहै 'सो बने नहीं' क्योंकि जिस आत्मासे प्राण उत्पन्नभया है सो अक्रियहै) । और ' एकऋषिरत्ता ' < एकर्षि हुआ भोक्ता तू है > अर्थात् एकर्षिनामवाला अग्निरूपहुआ सर्व हविषादिकों का भोक्ता तू है । और ' विश्वस्य सत्पतिः ' < विश्व

याते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता या श्रोत्रे या चक्षुषि ।
याचमनसि सन्तताशिवांतांकुरुमोत्क्रमीः ॥ १२ । २८ ॥

का सत्यपति तू है > अर्थात् सम्पूर्ण जगत् का प्रत्यक्ष विद्यमान पति तू है । अथवा विश्वका श्रेष्ठपति तू है । और 'वयमाद्यस्य दातारः' < हम भक्षणके दाता हैं > अर्थात् हम कर्मी उपासक लोग मेरे भक्षणके योग्य हविषा (हवनकरनेयोग्य वस्तु) के दाता हैं । और 'पिता त्वं मातरिश्वनः' < हे वायो ! तू पिता है > अर्थात् हे अन्तरिक्ष में चलनेवाले वायु (प्राण) ! तू हमारा पिता है । अथवा तू वायुका पिताहै, एतदर्थ तुझको सर्व जगत्का पितृत्व सिद्धहै क्योंकि तू आकाशरूप हुआ वायुआदि अस्मदादिकों का जनक है ताते ॥ ११ । २७ ॥

१२ ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां कहती हैं कि विशेष कहने करके क्याहै । हे प्राण ! 'या ते तनूर्वाचि प्रतिष्ठिता' < जो तेरी तनूवाणी विषे स्थित है > अर्थात् जो तेरी [अपानरूप] मूर्त्ति वक्ता (कहनेवाली) होनेसे वक्तृत्वरूप चेष्टा करतीहुई वाणी रूप स्थानविषे स्थितहै । और 'या श्रोत्रे या चक्षुषि' < जो श्रोत्र विषे जो चक्षुविषे > जो तेरी [व्यानरूप] मूर्त्ति श्रोता होने से श्रवणरूप चेष्टा को करती हुई श्रोत्रविषे स्थित है । और जो तेरी [प्राणरूप] मूर्त्ति द्रष्टा होनेसे दर्शनरूप चेष्टाको करती हुई चक्षु विषे स्थित है और 'याच मनसि सन्तता' < पुनः जो मन विषे (स्थितहै) तिसको शान्तकर > फिर जो तेरी [समानरूप] मूर्त्तिमती होने से संकल्पादि व्यापारको करती हुई मनविषे स्थित है तिसको तू शान्तकर । और 'शिवांतां कुरुमोत्क्रमीः' < निकलने से अमंगल मतिकरे > तू अपने निकलजाने से इन स्थानों को अमंगल (निकम्मे) मतकर ॥ 'सप्राणस्तच्चक्षुः सव्यानस्तच्छ्रोत्रंसोऽपानः सा वाक् ससमानस्तन्मन इतिश्रुतेः' ॥ १२ । २८ ॥

प्राणस्येदं वशे सर्व्वं त्रिदिवे यत्प्रतिष्ठितम् । मातेव पुत्रान्रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञाश्च विधेहि न इति ॥१३।२६॥

इति प्रश्नोपनिषदि द्वितीयप्रश्नः ॥ २ ॥

---

१३ ॥ हे सौम्य ! पुनः इन्द्रियां परस्परमें कहती भईं कि अब बहुत कहनेसे क्या है 'प्राणस्येदं वशे सर्व्वं' < यह सर्व प्राणके वश है > अर्थात् इस लोकविषे यह जो कुछ प्रत्यक्ष उपभोग प्रकटहै सो सर्व प्राणकेही वशमें बर्तता है । और 'त्रिदिवे यत् प्रतिष्ठितम्' < स्वर्गविषे जो स्थित है > अर्थात् इस लोककी अपेक्षा अदृष्ट जो स्वर्गविषे देवतादिकोंका अमृतादि उपभोगरूप जगत् है तिसका भी पालक प्राणही है । हे सौम्य ! इस प्रकार विचार के इन्द्रियां पुनः कहती भईं कि हे सर्व में श्रेष्ठ, सर्वके पालक, प्राण ! 'मातेव पुत्रान्रक्षस्व श्रीश्च प्रज्ञाश्च विधेहि न इति' < मातावत् पुत्रोंका पालनकर और लक्ष्मीको और बुद्धिको हमारे अर्थ दे > अर्थात् तू जैसे माता अपने आश्रित बालकों का पालन रक्षा करे है तैसेही तेरेही आश्रित जो हम तिन अपने पुत्रोंकी रक्षाकर । और ऋगादि वेदविद्यारूपी ब्राह्मणोंकी ब्राह्मी लक्ष्मी है सो और प्रसिद्ध द्रव्य रत्नक्षेत्रादि ऐश्वर्यरूपा क्षत्रियों की लक्ष्मी, यह दोनों लक्ष्मियों करके, और तेरी स्थितिरूप निमित्त वाली अर्थात् जिस बुद्धिके होने से इस संघातरूप शरीर बिषे तेरी स्थिति रहै ऐसी बुद्धि को हमारे अर्थ दे हे सौम्य ! इस द्वितीय प्रश्न करके निर्धार किये प्राण के गुण संक्षेपमात्र से प्रतिपादन किये हैं इस रीति से सर्वरूप जो प्राण है सो वाक्-आदि इन्द्रियों करके स्तुति करनेद्वारा प्रकट भई जो उसकी महिमा तिस महिमावाला है और सोई प्रजापति है । इति निश्चितम् ॥ १३ । २६ ॥

प्रश्नोपनिषद्के द्वितीयप्रश्नकी भाषाटीका समाप्त हुई ।

अथ प्रश्नोपनिषद्गतस्तृतीयप्रश्नः ॥

अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ भगवन् कुत एष प्राणो जायते कथमायात्यस्मिञ्छरीरे आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते केनोत्क्रमते कथं बाह्यमभिधत्ते कथमध्यात्ममिति ॥ १ । ३० ॥

प्रश्नोपनिषद्के तृतीयप्रश्नकी भाषा टीका का प्रारम्भ ।

हे सौम्य ! पूर्वोक्त प्रकार इन्द्रियों करके की हुई स्तुतिद्वारा प्राण का प्रजापतिपना और भोक्तापना आदिक गुणों के समुदाय का निर्धार करके, अब प्राणकी उत्पत्ति आदिकों का निर्णय करते हुये तिसकी उपासना के विधानार्थ इस तृतीय प्रश्न का आरंभ करते हैं ॥

१ ॥ हे सौम्य ! 'अथ हैनं कौसल्यश्चाश्वलायनः पप्रच्छ' <तिसके अनन्तर इसको अश्वलका पुत्र कौसल्य नामवाला मुनि पूछताभया> अर्थात् कवन्धी मुनि और भार्गवमुनि के दोप्रश्नोंद्वारा प्राणके प्रजापतित्व आदि गुणों के निर्धार होने के अनन्तर इस पिप्पलाद मुनीश्वररूप आचार्य को अश्वलमुनिका पुत्र कौसल्य नामवाला मुनि प्रश्न करता भया कि 'भगवन् कुत एष प्राणो जायते' <हे भगवन् ! यह प्राण किससे उपजताहै> अर्थात् हे भगवन् ! हे सर्वज्ञ ! यह प्राण ८कि जिसकी महिमा आपने दो प्रश्नोंके उत्तर करके निर्धारित किया, सो किसकारण से उपजता है । और ८ 'कथमायात्यस्मिञ्छरीरे' <कैसे इस शरीरविषे आवताहै> अर्थात् ऽउपजाभया किसप्रकार इसशरीरविषे आवताहै ऽ अर्थात् प्राणको शरीर धारणका निमित्त कौन है । और ऽ 'आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते' <अपने आपका विभाग करके कैसे स्थित होताहै> ऽए

तस्मै सहोवाचातिप्रश्नान् पृच्छसि ब्रह्मिष्ठोऽसि तस्मात्तेऽहं ब्रवीमीति ॥ २ । ३१ ॥

प्रकार से स्थित होता है । और ‹ 'केनोत्क्रमते' ‹ किस करके निकसताहै › › किस वृत्ति विशेषकरके इस शरीरसे निकसताहै । और ‹ 'कथं वाह्यमभिधत्ते' ‹ बाह्यको कैसे धारताहै › › बाह्य जो अधिभूत और अधिदैव तिसको कैसे धारता है, अर्थात् [प्राणादि पांचवृत्ति भेदवाले प्राणका सूर्य और पृथिवी आदि पांचभूत अधिदैव और चक्षुरादि पांच इन्द्रियां अधिभूतरूप बाह्य हैं] तिसको यह प्राण कैसे धारताहै । और ‹ 'कथमध्यात्ममिति' ‹ अध्यात्म को कैसे धारता है › › अध्यात्म को किसप्रकार धारण करता है [प्राणादिरूप अन्तर्वर्त्ति जो प्राणकी पांच वृत्तियां हैं सो प्राण का अध्यात्मरूप है यह आगे कहेंगे] ॥ १ । ३० ॥

२ ॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार जब कौसल्य नामवाले मुनिने अपने आचार्यसे प्रश्न किया तब 'तस्मै स होवाच' ‹ तिसको सो स्पष्ट कहता भया › अर्थात् तिस प्रश्नकर्त्ता शिष्यको सो सर्वज्ञ पिप्पलादनाम मुनीश्वर स्पष्ट कहताभया कि ‹ 'अति प्रश्नान् पृच्छसि' ‹ अति प्रश्नोंको पूछताहै › › हे प्रश्नकर्त्ताओं में कुशल ! तू अतिश्रेष्ठ प्रश्नोंको करता है, क्योंकि प्रथम तो प्राणही दुर्विज्ञेय (दुःख से जानने योग्य) है एतदर्थ उस विषयक जैसे कठिन प्रश्न होय तैसेही करने योग्य हैं, एतदर्थ तू अतिप्रश्नों को पूछताहै । और ‹ 'ब्रह्मिष्ठोसीति' ‹ ब्रह्मनिष्ठ है › › एतदर्थही तू ब्रह्मवेत्ताहै ‹ 'तस्मात्तेऽहं ब्रवीमि' ‹ ताते मैं कहताहौं › › एतदर्थ मैं तेरे ऊपर प्रसन्न भयाहौं तिस कारण से जो तैंने प्रश्न किये हैं तिनका उत्तर मैं तेरे अर्थ कहताहौं तिसको श्रवण कर ॥ २ । ३१ ॥

३ ॥ पिप्पलाद उवाच ॥ 'आत्मनः एष प्राणो जायते' ‹ आत्मासे यह प्राण उपजताहै › हे सौम्य ! अब प्रश्न करनेवाले

आत्मनः एष प्राणो जायते यथैषा पुरुषे छायैतस्मिन्नेतदाततं मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे ॥ ३ । ३ २ ॥

कौसल्यनाम मुनिको पिप्पलाद मुनि कहतेभये कि हे कौसल्य ! 'अप्राणोह्यमनःशुभ्रो ह्यक्षरात्परतःपरः । एतस्माज्जायते प्राणः' <जो प्राणमन आदि उपाधि रहित सदा शुद्ध कार्यकारण से परे अक्षर सत्य परमात्मा है तिससे यह सर्व में श्रेष्ठप्राण उपजता है> ॥ प्र० ॥ कैसे उपजता है ॥ उ० ॥ 'यथैषा पुरुषेछायैतस्मिन्नेतदाततं' < जैसे पुरुष बिषे छाया तैसे तिसबिषे यह समर्पण किया है > हे सौम्य ! जैसे मस्तक हस्त पादादि अवयव समुदायरूप पुरुष निमित्त से नैमित्तिकी यह छाया उपजती है । तैसे ही तिस ब्रह्मरूप सत्य अक्षर पुरुषबिषे यह प्राणनामकरके छाया स्थानीय मिथ्यारूपवाला तत्त्व समर्पित है । और < 'मनोकृतेनायात्यस्मिञ्छरीरे' < मनकरके किये कर्म निमित्त से इस शरीर बिषे आवता है > देह बिषे जो आवता है सो छायावत् मनके सङ्कल्प इच्छादि वृत्तियों करके किये जे कर्म तिन कर्मरूप निमित्त से इस शरीरबिषे आवता है 'पुण्येनपुण्यं लोकंनयति' < पुण्यसे पुण्यलोकको लेजाता है > । यह इसही प्रश्न के सातवें वाक्यसे कहेंगे । और < 'तदेव सक्तः सहकर्मणेति' < आसक्त हुआ तिसहीको सहित कर्मके पावता है > अर्थात् यह कर्म करनेवाले कर्मीपुरुषका मन जिसफल बिषे आसक्त होताहै तब तिस आसक्तताकरके वे पुरुष तिसही को , कि जिस बिषे आसक्त हैं, कर्मकरके पावते हैं । इस बृहदारण्य के छठे अध्याय की श्रुति बिषे शरीरों का ग्रहण कर्मोंकरकेही साध्यहै ऐसाकहाहै॥३।३ २॥

४॥ हे सौम्य ! पिप्पलादमुनि कहताभया कि हे कौसल्य ! अब दृष्टान्तपूर्वकश्रवणकरो 'यथा सम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते' < जैसे चक्रवर्तीराजा निश्चय करके अधिकारियों को योजना करताहै > अर्थात् जैसे कोई एक चक्रवर्ती राजा अपने राज्यके निबन्धमें कार्या-

यथासम्राडेवाधिकृतान्विनियुङ्क्ते एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्वेत्येवमेवैष प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेव सन्निधत्ते ॥ ४ । ३३ ॥

ध्यक्षताके योग्य पुरुषोंको निश्चय करके तब उन अधिकारी पुरुषोंको देश विभागसे योजना करताहै और कहताहै कि ‹ 'एतान् ग्रामानेतान् ग्रामानधितिष्ठस्व' ‹ तुम इतने ग्रामके और तुम इतने ग्रामके अधिपति होयके स्थित होउ › › हे कार्य्याध्यक्षताके योग्य पुरुषो ! मेरी आज्ञासे तुम इतने ग्रामोंके मंडल देश के और तुम इतने ग्रामके मंडल देश के अधिपति होयके देशोंका रक्षण पालन सावधानीसे करते रहो ॥ हे सौम्य!ऽ' इत्येवमेवैष प्राणः इतरान् प्राणान् पृथक् पृथगेवसन्निधत्ते' ‹ ऐसेही यह प्राण इतर प्राणोंको पृथक्२ ही योजना करताहै ›ऽ इस कहे हुये दृष्टांतके प्रमाण ही,यह जो मुख्य प्राणहै सो चक्षुरादि इन्द्रियरूप अन्य प्राणोंको नेत्रादि यथायोग्य स्थानबिषे दर्शनादि क्रिया करनेके अर्थ भिन्न २ अर्थात् एकका काम दूसरा न करे इस प्रकारसे योजना करता भया । और अपने अपानादि भेदरूप इतर प्राणों को गुदादि स्थानोंबिषे मलत्यागादि क्रियाके अर्थ योजना करता है ॥ ४ । ३३ ॥

५ ॥ हे सौम्य ! अब मुख्य प्राण अपने अपानादि भेदरूप पांच वायुको जिस २ कार्य्यके अर्थ जिन २ स्थानोंबिषे नियुक्त करता है तिसको श्रवणकरो 'पायूपस्थेऽपानं' ‹ गुदा (और) लिंगबिषे अपानको › अर्थात् जो गुदाद्वारा मलको और लिंग द्वारा मूत्रको त्यागकरनेरूप क्रिया का कर्त्ता अपनाही भेदरूप अपान नामवाला वायु तिसको गुदा और लिंग बिषे उक्तकार्य करनेके नियुक्त करता भया । और ‹ ' चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणःस्वयं प्रातिष्ठते' ‹ चक्षुः (और) श्रोत्र मुख (और) नासिकाबिषे प्राणआप स्थितहोताहै ›› तिसही प्रकार दर्शनादि

पायूपस्थेऽपानं चक्षुःश्रोत्रे मुखनासिकाभ्यां प्राणः स्वयं प्रातिष्ठते मध्येतु समानः। एषह्येतद्धुतमन्नं समन्नयति तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति ॥ ५ । ३४ ॥

ज्ञानरूप क्रियाका करता हुआ चक्षुः श्रोत्र के कहनेसे ज्ञानेन्द्रियां मुख और नासिकासे आवागमन करताहुआ चक्रवर्ती राजास्थानीय स्वयं (आप) प्राणस्थितहोताहै। और ८ 'मध्येतु समानः' < मध्यविषे तो समान (वायुहै) > ७ अपना भेद समान वायु तिसको प्राण अपानके मध्य नाभिरूप स्थानविषे नियुक्त करताहै। और ८ 'एषह्येतद्धुतमन्नं समन्नयति' < यहही इसभुक्त अन्नको लेजाता है > ७ यहही वायु भोजन किये अन्नादिकों का रस जो उदरविषे होता है तिसको सर्व नाड़ियों प्रति पृथक् २ सम (जिसका तिसको) लेजाता है एतदर्थ इसको समान नाम से कहते हैं। और ऽ 'तस्मादेताः सप्तार्चिषो भवन्ति' < ताते इतनी सात ज्वालावाला होता है > ऽ तिस कारणसे यह समान नामवाला वायुही इस मुखद्वारसे उदर कुंडविषे हवन किये अन्नादिकोंके रसादिकों को प्रत्येक नाड़ियोंप्रति सम पहुँचावता है, एतदर्थ भोजन किये अन्नादिकों के रसरूप समिधावाले जठराग्निरूप हेतुसे हृदयरूप देशसे यह सातसंख्यावाले मस्तकगत दो नेत्रके, दो कर्णके, दो नासिकाके, एकमुखका, इन सातोंद्वार सम्बन्धी ज्ञानरूप ज्वालावाला है ताते इसको 'सप्तार्चिषः' < सात अर्चीवाला > कहते हैं॥ अभिप्राय यह है कि प्राण करकेही दर्शन श्रवण और रूपादि विषयों का प्रकाश होता है ॥ ५ । ३४ ॥

६ ॥ हे सौम्य ! पिप्पलाद मुनि कहते भये कि हे कौसल्य ! 'हृदिह्येष आत्मा' < हृदय विषेही यह आत्मा है > अर्थात् कमलाकार हृदय नाम करके विख्यात जो मांसपिंड तदन्तर्गत जे हृदयाकाश तिस विषे, यह आत्माकरके सहित लिंग (जीव) आत्मा वर्तता है और ऽ 'अत्रैतदेकशतं नाडीनां' < यहां यह

हृदि ह्येष आत्मा । अत्रैतदेकशतं नाडीनां तासां शतं शतमेकैकस्यां द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्त्यासु व्यानश्चरति ॥ ६ । ३५ ॥

नाड़ियोंकी (संख्या) एक अधिक एकसौ है (१०१) यहां इस हृदय विषे मुख्य नाड़ियां संख्या (गिनती) करके एकऊपर एकसौ होती हैं । और ('तासां शतं शतमेकैकस्यां' (तिनके मध्य एक एक विषे सौ सौ भेद हैं)) तिन प्रत्येक मुख्य नाड़ी विषे सौ सौ भेदहैं । और ('द्वासप्ततिर्द्वासप्ततिः प्रतिशाखानाडीसहस्राणि भवन्ति' (प्रतिशाखारूप नाड़ीके (भेद) बहत्तर बहत्तर हजार होते हैं)) पुनः भी पृथक् पृथक् प्रतिशाखारूप नाड़ी के भेदरूप बहत्तर बहत्तरहजार नाड़ियां होती हैं । अर्थात् सुषुम्णा नामवाली एक मुख्य नाड़ीरूप मूल (पींड़) की स्कन्धशाखा (सर्वसे पुष्ट शाखा) रूप सौ १०० संख्यावाली मुख्यनाड़ी हैं तिन प्रत्येककी शाखारूप जो सौ सौ नाड़ियां हैं, तिन एक एक की उपशाखारूप नाड़ियोंकी संख्या बहत्तर बहत्तरहजार होती हैं । ताते सर्व मिलके बहत्तर करोड़ नाड़ीहैं ॥ [हे सौम्य! अब इनको पुनः श्रवण करो] उक्त नाड़ियोंकी संख्याका जो वर्णनहै सो वृक्षरूपसे है, तहां हृदयकमलदेशसे जो निकलीहुई नाड़ियां हैं तिनके मध्य जो सुषुम्णा नामवाली मुख्यनाड़ी है सो मूल (पींड़) के स्थानापन्न है, और तिसकी दश नाड़ियां स्कन्ध (पुष्ट शाखा) रूपहैं, और उन स्कन्धरूप दश नाड़ियों में से प्रत्येककी नव नव स्थूल शाखाहैं । एतदर्थ इसप्रकार होनेसे एकमूलकी सुषुम्णा नामवाली नाड़ीको छोड़के स्थूलशाखारूप नव्बे ९० नाड़ियां और दश स्कन्धरूप शाखा यह सर्व मिलके एकसौ १०० संख्या की होतीहैं । तिन सौ नाड़ियोंके मध्य एक एक नाड़ी की शाखा रूप सौ सौ नाड़ियां और हैं । इसप्रकार होनेसे एक सुषुम्णा मुख्य नाड़ी है औरसौ स्कन्धरूप नाड़ियांहैं । और तिनकी शाखा

अथैकयोर्द्ध्व उदानः पुण्येन पुण्यं लोकं नयति । पापेन पापमुभाभ्यामेव मनुष्यलोकम् ॥ ७ । ३६ ॥

रूप दशहजार नाड़ियां हैं तिन दशहजार नाड़ियोंमें से प्रत्येक नाड़ियोंकी उपशाखारूप बहत्तर बहत्तरहजार ७२००० नाड़ियां हैं ॥ हे सौम्य! इसप्रकार होनेसे बहत्तरहजार ७२००० संख्याको दशहजार संख्यासे गुणा करनेसे एकमूलकी सुषुम्णानाड़ी को छोड़के बहत्तर करोड़ ७२००००००० नाड़ियां होती हैं इति ॥ 'आसु व्यानश्चरति' < तिसाबिषे व्यानवायु विचरताहै > तिन सर्व नाड़ियों बिषे एक व्याननामवाला वायु विचरताहै । एतदर्थ इस प्राण के भेद वायुको सर्व शरीर बिषे व्याप्तहोनेसे व्याननामकरके कहते हैं ॥ हेसौम्य! जैसे सूर्य्यबिम्बसे किरण सर्व ओरको निकलती हैं ॥ तैसे शरीरबिषे हृदयकमल से सर्व ओरको गमनकरनेवाली जो नाड़ियां तिनके सम्बन्धसे सर्वदेहमें व्याप्तहोके व्यानवायु बर्त्तता है । और स्कन्ध आदिक जो जो शरीरकी संधिके स्थान और मर्म स्थानहैं तिन तिनबिषे विशेषकरके बर्त्तताहै । और व्यान जो है सो प्राण और अपानरूप वृत्तिके मध्य उनके अभावकालमें उद्भूतवृत्तिरूपहै । और यह पराक्रमवाले पुरुषके कर्मोंका कर्त्ता होता है ॥ ६ । ३५ ॥ हे सौम्य! प्रथम जो कौसल्य मुनिने प्रश्न किया रहा कि 'आत्मानं वा प्रविभज्य कथं प्रातिष्ठते' मुख्यप्राण अपनेआप विभागकरके किसप्रकारसे स्थित होताहै तिसका उत्तर चौथे, पांचवें, छठे, इन तीनवाक्यों से पिप्पलादमुनिने कहा सो तेरे अर्थ कहा ॥

७ ॥ हे सौम्य! अब उदानवायुके स्थानको कहतेहुये, कौसल्य मुनिके 'केनोत्क्रमते' < किसकरके (शरीर से) निकलता है > इस चतुर्थ प्रश्नका उत्तर कहते हैं ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे कौसल्य! 'अथैकयोर्द्ध्वउदानः' < एक ऊंचे उदान है > अर्थात् उन एक अधिक सौ १०१ नाड़ियों के मध्य ऊंचे मूर्द्धनी ब्रह्मरंध्र

स्थान विषे जानेवाली सुषुम्णा नामवाली मुख्यनाड़ी तिस एक नाड़ी से विशेष हुआ ऊपरको ब्रह्मरंध्रपर्यंत जाताहुआ और समान हुआ पैरसे लेके माथे पर्यंत वर्त्तमान हुआ उदान वायु विचरता है । और ८ ' पुण्येन पुण्यलोकं नयति पापेन पापं' ' पुण्यसे पुण्यलोकको प्राप्तकरता है पापसे पापको ' सो उदानवायु वेदशास्त्रविषे विधान किये जे पुण्यरूप कर्म तिनके करनेसे कर्त्ता पुरुषको देवतादिकों के स्थानरूप पुण्य (स्वर्ग) लोकको प्राप्तकरता है । और तिन पुण्यकर्म से विपरीत वेदशास्त्र करके अविहित जे पापकर्म तिनके कर्त्ता पुरुष को पशु, पक्षी, श्वान, शूकरादि योनिरूप पापमय नरकको प्राप्त करता है । और ' उभाभ्यामेव मनुष्यलोकं ' ' दोनों से ही मनुष्यलोकको (प्राप्तकरता है) ' पुण्य और पाप दोनों के समुच्चय से मनुष्य लोक (शरीर) को प्राप्तकरता है ॥ ७ । ३६ ॥ हे सौम्य ! सुषुम्णा नाड़ी विषे और सर्वदेहविषे ब्रह्मरंध्रपर्यंत उदानवायु व्याप्त होके वर्त्तता है सो स्थूलशरीर से लिंग (सूक्ष्म) शरीरके निकलने में अग्रसरहै, सो उपासना के अनुसार उत्तम मध्यम अधम लोकोंविषे प्राप्तकरताहै, अर्थात् प्रणव देवयान पञ्चाग्नि आदिकोंकी उपासनावाले उपासकको ब्रह्मरंध्रके द्वारा सर्वोत्तम ब्रह्मलोक को प्राप्तकरता है । और सूर्य अग्नि आदिकों के उपासकको चक्षु वागादि द्वारसे सूर्य अग्नि आदिकों के स्वर्गादि मध्यमलोक को प्राप्तकरता है । और वेदशास्त्र से विरुद्ध निषिद्ध भूत प्रेतादिकों के उपासकों को गुदा लिंग नख केशादि अपवित्र मार्गों से पशु पक्षी श्वान शूकर चांडालादि पापमय नरकरूप योनियों को प्राप्तकरता है । और पाप पुण्य दोनों के सम और प्रधानतासे करनेवाले को मनुष्यलोक के ताईं प्राप्तकरता है । अर्थात् पुण्य प्रधान होय और पाप सामान्य होय तब सो श्रेष्ठ कुल में धन विद्या संतति आरोग्यता आदिकों करके सम्पन्न होता है और जो पाप प्रधान होय और पुण्य सामान्य होय तो सो पुरुष कुल

आदित्यो ह वै बाह्यःप्राणउदयत्येषह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः। पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्यान्तरायदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः ॥ ८ । ३७ ॥

विद्या धन संतति आरोग्यतादि सुखकरके रहित होता है। अर्थात् जिसके पुण्य अधिक और पाप थोड़े होतेहैं तिन पुरुषों को इस मनुष्यलोकविषे ही सुख अधिक और दुःख थोड़ाहोताहै। और जिनका पाप अधिक और पुण्य थोड़ा होताहै तिनको दुःख बहुत और सुख थोड़ा होताहै ताते पुरुष को इसलोक परलोक में सुख की प्राप्ति के अर्थ शास्त्रविहित पुण्यकर्महीं करना उचित है; और पुण्य पापके समान होने से दुःख सुखों की भी समान प्राप्ति होती है। अभिप्राय यह है कि मनुष्यदेहकी प्राप्ति पाप पुण्य दोनोंसेही होती है। और जिन्होंने ज्ञानाग्नि करके पाप पुण्य दोनों को निर्मूल किया है सो मोक्ष होता है ॥ इति प्रसिद्धम् ॥

८ ॥ हे सौम्य ! उक्त प्रकार कौसल्यमुनि के चतुर्थप्रश्न का उत्तर कहके, अब आधिभूत और अधिदैवरूप बाह्य को यह प्राण कैसे धारण करे है, यह पंचम प्रश्न का और अध्यात्म को कैसे धारण करे है इस षष्ठ प्रश्नका उत्तर पिप्पलादमुनिने कहा है तिसको श्रवण करो ॥ पिप्पलाद उवाच ॥ हे कौसल्य ! अर्थात् हे प्रश्नकर्ताओं में कुशल ! मैं कहौं सो सुन ' आदित्यो ह वै बाह्यः प्राण उदयत्येष ह्येनं चाक्षुषं प्राणमनुगृह्णानः ' (आदित्य ही प्रसिद्धबाह्यका प्राण है यह ऊर्ध्व को जाता है यह इस चक्षु विषे स्थित प्राणको अनुग्रह करताहुआ वर्त्तता है अर्थात् यह जो प्रकट सूर्य है सोई बाहर समष्टिका प्राणहै और यह सूर्यरूप प्राण उदयहुआ ऊंचे को जाता है (जैसे नाभिसे उदय हुआ प्राण ऊंचे को जाता है तैसे) और यह सूर्यरूप प्राण इस चक्षु इन्द्रिय विषे स्थित व्यष्टि प्राणको अपने प्रकाश से अनुग्रह करता

हुआ अर्थात् रूपविषयके ज्ञान विषे चक्षुके प्रकाश को करता हुआ वर्त्तता है। और 'पृथिव्यां या देवता सैषा पुरुषस्यापानमवष्टभ्य' < पृथिवी विषे जो देवताहै सो इस पुरुषकी अपान वृत्ति को आकर्षण करके वर्त्तता है > तैसेही पृथिवी विषे अभिमानी जो प्रसिद्ध [अग्नि] देवता है सो यह पुरुष की अपाननाम वाली प्राणवृत्ति को आकर्षण द्वारा स्ववशकरके नीचेहीको खींचने रूप अनुग्रह को कर्त्ताहुआ वर्त्तता है। यदि ऐसा न होय तो शरीर भारी होने से गिरपड़ेगा। अथवा अवकाश सहित (थल) मैदानमें ऊपरको जायगा। सोतो होता नहीं, यह अग्नि रूप पृथिवी काही अनुग्रह है। अर्थात् बाह्यका जो समष्टि अपानवायु अग्नि देवतारूप पृथिवी सो पुरुषकी जो अधोगामी प्राणकी अपाननाम्नी वृत्ति है तिसको आकर्षण करतीहुई शरीर को अपने आकर्षणमें रक्खे है इसही हेतुसे यह शरीर भारीहुआ भी गिरता नहीं और ऊपरको भी जाता नहीं यहही बाह्य अपान का अनुग्रहहै। और 'अन्तरा यदाकाशः स समानो वायुर्व्यानः' < जो मध्यमें आकाशहै सो वायु समान रूपहै व्यानके अर्थ अनुग्रहकरता है > यह जो स्वर्ग (सूर्य्य) और पृथिवीके मध्य में आकाश है तिसविषे स्थित जो वायु है तिसको। मञ्चस्थपुरुषवत्, आकाशनामसे कहते हैं। ['मञ्चाःक्रोशन्तीति' < मञ्च पुकारते हैं > इस वाक्य विषे जैसे मञ्चशब्द करके मञ्चकोही ग्रहण न करके मञ्चस्थ पुरुष पुकारते हैं, ऐसा लक्षणासे ग्रहण होता है। तैसेही यहां आकाश शब्दसे केवल आकाशहीका ग्रहण न करके तिस आकाशविषे स्थित वायुको लक्षणा से ग्रहण करते हैं] और सो वायु समानरूपहै, सो अन्तर समान वायुके अर्थ अनुग्रह करताहुआ वर्त्तता है सो काहे से कि अन्तर समान वायु प्राण और अपानके मध्यमें स्थित है, और बाह्य समानवायु सूर्य्यरूप प्राण और पृथिवीरूप अपान इनके मध्य में स्थित है; ताते अन्तर समानवायु और बाह्य समानवायु इन दोनोंको अ-

तेजो ह वै उदानस्तस्मादुपशान्ततेजः । पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ॥ ९ । ३८ ॥

न्तर बाह्य प्राण अपानके मध्य स्थित होनेसे समताहै, ताते समष्टि समान वायु व्यष्टि समान वायुपर अनुग्रह करता है । और सामान्यरूप से जो बाह्य का वायु है सो बाह्य का व्यान वायु है सो अन्तरके व्यानवायुके अर्थ अनुग्रह करता है क्योंकि व्याप्तिकी समताहै अर्थात् अन्तरका व्यानवायु शरीर के अन्तर नखशिख पर्य्यन्त व्याप्त है और बाह्य का व्यानवायु विराडात्माके अन्तर द्यौ (ब्रह्मलोक) से पाताल पर्य्यन्त व्याप्त है । ताते व्याप्तिकी समतासे बाह्यका समष्टि व्यानवायु अन्तर के व्यष्टि व्यानवायुपर अनुग्रह करताहुआ वर्त्तता है ॥ ८ । ३७ ॥

९ ॥ हे सौम्य! पुनः पिप्पलादमुनि कहतेभये कि हे कौसल्य! ‘ तेजो हवै उदानस्तस्मादुपशान्ततेजः ’ ‹ प्रसिद्ध तेजही उदान रूप है ताते तेजसे रहित होता है › अर्थात् जो बाह्यका स्पष्ट सामान्य तेजहै सो बाह्यका समष्टि उदानरूप है । अभिप्राय यह है कि बाह्यका सामान्य तेज है सो अपने प्रकाशकरके शरीरस्थ उदानवायुके अर्थ अनुग्रह करता है । हे सौम्य! [इस प्रकार सूर्य्यादिरूपसे मुख्य प्राणको प्राण अपान समान उदान व्यान इनके अर्थ अनुग्रह करने के कथनसे अध्यात्मरूप प्राणादि वृत्तियोंके अनुग्रह का कर्त्तापना कहा । और सूर्य अग्नि आकाश सामान्य वायु और सामान्य तेज यह क्रमसे बाह्य के प्राणादि रूपहुआ मुख्य प्राण सूर्यादि अधिदैवरूप बाह्य को धारता है इस प्रकार कहा । और तिस सूर्यादिरूपसे जो स्थिति सोई तिस का धारण है । और प्राण अपानादिकोंके अनुग्रह से चक्षुरादिकों के अनुग्रह से तिसद्वारा ‘ मुख्य प्राणको ’ उन चक्षुरादि अधिभूत स्वरूप बाह्यरूपका धारण कर्त्तापना कहा । और ‘ सप्राण

८ः सोऽपानः सा वाक् स व्यानस्तच्छ्रोत्रं ससमानस्तन्मनः

यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति प्राणस्तेजसा युक्तः।
सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति ॥ १० । ३९ ॥

स उदानः स वायुरिति श्रुत्यन्तरे '–< सो प्राण सो चक्षु सो अपान सो वाणी सो व्यान सो श्रोत्र सो समान सो मन सो उदान सो वायु >। इस श्रुति करके चक्षुरादिकों को प्राणादि स्वरूपता के कथनसे और चक्षुरादिकों के अनुग्रह कर्त्तापने के कहने से चक्षुरादि रूप अध्यात्मका धारण कर्त्तापना मुख्य प्राण को कहा ॥ इस रीति से यहां पर्यन्त बाह्यको कैसे धारण करता है और अध्यात्म को किस रीतिसे धारण करता है, इन पंचम और षष्ठ दोनों प्रश्नों का उत्तर कहा, यह जानना] जिस करके तेज स्वभाववाला और शरीर से, लिंगको, बाहर निकलनेरूप क्रिया का करनेवाला उदानवायु भी बाह्य के तेज के अनुग्रह को पाया हुआ ही शरीर बिषे बर्त्तता है तिसही कारण से जब जीव के जीवने के हेतु कर्म (प्रारब्ध) के उपराम भये बाह्य के तेज-रूप उदान के, अन्तर उदानवायुके निमित्तके, अनुग्रहके अभाव से लौकिक पुरुष स्वाभाविक तेज से रहित होता है, तब उस समय उस पुरुष को क्षीण आयुवाला मरने के योग्य जानना। और ' पुनर्भवमिन्द्रियैर्मनसि सम्पद्यमानैः ' < मनबिषे प्रवेश को प्राप्त भई इन्द्रियों के साथ अन्य शरीर को पावता है> सो ' मरनेवाला ' तेजादिकों के शान्त भये पीछे मनबिषे प्राप्त भई जे वागादि इन्द्रियां ' वाङ्मनसि सम्पद्यते ' तिनके साथ ,अध्यास के वश भया, अन्य शरीर को पावता है॥ ९। ३८॥

१० ॥ हे सौम्य! हे कौसल्य! 'यच्चित्तस्तेनैष प्राणमायाति' < यह जिसमें चित्तवाला होता है तिस करके प्राणको पावता है अर्थात्, यह जीव जिस पशुपक्षि आदिक शरीर में चित्त करके युक्त होताहै, अर्थात् जिन शरीरों में चित्त संकल्पादि चेतना धर्मवाला होता है, तिन शरीरों में मरणकाल बिषे उस चित्तके संकल्पसे

य एवं विद्वान् प्राणं वेद । नहास्य प्रजा हीयतेऽमृतो भवति तदेष श्लोकः ॥ ११ । ४० ॥

इन्द्रियोंके साथ मिलके मुख्य प्राणवृत्तिको पावता है, अर्थात् मरण कालविषे इन्द्रियों की वृत्ति के क्षीण भये यह जीव मुख्य प्राणवृत्तिरूप से ही स्थित होता है । तब इसके ज्ञातिसम्बन्धि के लोग परस्पर में कहते हैं कि अभी तो यह जीवता है । और 'प्राणस्तेजसा युक्तः सहात्मना यथा संकल्पितं लोकं नयति' < प्राण तेज करके युक्त हुआ साहित आत्मा के जैसा निश्चय कियाहै तैसे लोकको पावताहै > सो प्राण जब बाह्य के तेजरूप उदानवायु के अनुग्रह को प्राप्तभई जे 'अन्तर' उदानवृत्ति , जो उत्क्रमण में प्रधान है, तिसकरके युक्त हुआ शरीरके अधिपति जीवात्मा (साभासलिंग) के साथ तादात्म्यभावको पावता है, तब तिस तादात्म्यताकरके भोक्तारूपभया प्राण उक्तप्रकार उदान-वृत्ति सेंही युक्तहुआ तिसही भोक्ताको , कि जिसके तादात्म्यसे आप भोक्ताभया है, पुण्यपाप रूप स्वकर्म के वश से जैसा इस जीवात्माका अभिप्राय है तैसेही लोकको प्राप्तकरता है॥१०।३६॥

११ ॥ हे सौम्य ! [उक्तप्रकार करके व्यष्टि समष्टि प्राण के स्वरूप स्थानादिकों का निर्णय करके अब तिसकी उपासना का विधान करते हैं । यहां यह अर्थ है कि आत्मा से प्राण उपजता है सो मनके किये धर्म अधर्म से शरीर के अर्थ अनुग्रह करता है । और आपके पांचप्रकार विभाग करके वायु (गुदा) और उपस्थ (लिंग) इन स्थानों विषे अपनेही भेद अपान वायु को स्थापन करे है । और चक्षु श्रोत्र मुख नासिकारूप स्थान विषे स्वस्वरूप प्राणकोही स्थापित करे है । और नाभिरूप स्थान विषे अपने समानरूप भेद को स्थापन करे है और नाड़ियों के समूह-रूप स्थानविषे अपने भेद व्यानरूप को स्थापित करे है । और सुषुम्णानाड़ीरूप स्थानविषे अपने भेद उदानवायु को स्थापित

करे है। और प्राण अपान समान व्यान और उदान, इनके अनुग्रह कर्त्ता वाह्यरूप सूर्य पृथिवी देवता आकाश वायु और तेजरूप से अधिदैवको धारणकरे है। और सूर्यादिकों के अनुग्रहसे प्राणादि वृत्तिरूप अध्यात्मको और चक्षुवाक्श्रोत्रमनऔरत्वचारूपऔर चक्षुरादि इन्द्रियोंकरके ग्रहणकरनेयोग्य रूपादि विषयरूप अधिभूतको धारणकरेहै। और सोई प्राण उदानवृत्तिसे भोक्ताकरके युक्त हुआ भोक्ता (जीवात्मा) को देहत्यागान्तर लोकान्तर किंवा देहान्तर प्रति लेजाताहै॥ हे सौम्य! सोई प्राण सर्वमें ज्येष्ठ श्रेष्ठहै, सोई प्रजापति है, सोई अन्नका भोक्ताहै। इसप्रकार उत्पत्त्यादि उक्त विशेषणोंकरके युक्त प्राणको जानता है सो अग्रिम कहे फलको पावताहै]॥ हे सौम्य! हे कौसल्य! 'य एवं विद्वान् प्राणं वेद' < जो विद्वान् ऐसे प्राणको जानताहै > अर्थात् जो कोई ब्राह्मणादि विद्वान् कहे प्रकार उत्पत्त्यादि विशेषणोंकरके युक्त मुख्यप्राणको जानताहै अर्थात् उपासता है। तिसको इसलोक परलोक सम्बन्धि जो फल प्राप्तहोता है सो वेद भगवान् कहतेहैंऽ' न हास्यप्रजाहीयतेऽमृतो भवति तदेषश्लोको (भवति)' < इसकी प्रजा उच्छेदको पावती नहीं > और < मरण धर्मसे रहित होता है तिस विषे यह श्लोक (मंत्र) है > इस विद्वान् की ' कि जो प्राणका सम्यक् उपासक है, पुत्र पौत्रादिरूप प्रजा ,उसकी विद्यमानता में, विनाश को पावती नहीं । और शरीर के पतन भये यह प्राणोपासक पुरुष मुख्य प्राण (सूत्रात्मा) केसाथ सायुज्यता (अभेदता) को पाय मरण धर्मरहित अमर होता है ऽ [यह जो प्राणके साथ एकतारूप अमृतभाव है सो प्राणके सकाम उपासकको अन्तमें होताहै। और निष्काम उपासक को चित्त की एकाग्रता और शुद्धि द्वारा आत्मज्ञान होय मुख्य अमृतत्वकी प्राप्ति होतीहै] ऽ और इसही अर्थविषे यह अग्रिमवाक्यरूपमंत्र प्रमाण है॥ इतिसिद्धम् १ १। ४ ०॥

१ २॥ हे सौम्य! हे कौसल्य! ' उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वञ्चैव पञ्चधा अध्यात्मं चैव प्राणस्य ' < प्राणकी उत्पत्ति को आगमन को

उत्पत्तिमायतिं स्थानं विभुत्वञ्चैव पञ्चधा अध्यात्मञ्चैव प्राणस्यविज्ञायामृतमश्नुतेविज्ञायामृतमश्नुते॥१२।४१॥

इति प्रश्नोपनिषद्गतस्तृतीयप्रश्नः ॥ ३ ॥

स्थानको और पांच प्रकार से स्वामित्वभावको , और, अध्यात्मको, अर्थात् प्राणकी परमात्मा से उत्पत्तिको और मनके किये कर्मों से इस शरीर बिषे आगमन को और गुदा उपस्थादि स्थानों बिषे स्थितिको और चक्रवर्त्ति राजावत् प्राण वृत्ति के पांचभेद के पांच प्रकार से स्थापन रूप स्वामित्वको । और सूर्य्यादि रूप से स्थिति रूप बाह्यको । और प्राणादिवृत्ति रूपकी चक्षुरादिकों के आकारसे स्थितिरूप अन्तर अध्यात्माको ' विज्ञायामृतमश्नुते विज्ञायामृत मश्नुते ' < जानके अमरणभाव को पावताहै > हे सौम्य ! इसप्रकार प्राणको सम्यक्प्रकार जानके उपासना करनेवाला विद्वान् प्राणके साथ अभेदता से ऐक्यभावरूप अमृतको पावता है ' जानके अमृत को पावता है ' यहां जो द्विवारकथन है सो तृतीयप्रश्न की समाप्त्यर्थ अथवा अपरविद्यासम्बन्धि प्रश्नों की समाप्त्यर्थ किंवा अपरब्रह्मकी उपासना विद्या की समाप्ति के अर्थ है ॥ इति सिद्धम् ॥ १२ । ४१ ॐ ॥

इति प्रश्नोपनिषद् के तृतीयप्रश्नकी भाषाटीका समाप्त हुई ।

अथ चतुर्थप्रश्नःप्रारभ्यते ॥

अथ हैनं सौर्य्यायणी गार्ग्यः पप्रच्छ । भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति कस्यैतत् सुखं भवति कस्मिन्नु सर्व्वे संप्रतिष्ठिता भवन्तीति ॥ १ । ४२ ॥

अथ प्रश्नोपनिषद् के चतुर्थप्रश्न की भाषाटीका का प्रारम्भ ।

हे सौम्य ! प्रथम प्रश्न करके कहे प्रकार कर्म्म उपासनाकी 'परिणाम, गतिको श्रवणकरके तिनसे वैराग्यवान् हुआ । और द्वितीय तृतीय प्रश्नकरके कहीगई जे प्राणकी उपासना तिसकरके चित्तकी एकाग्रता और शुद्धिवाला हुआ और इसही करके विवेकादि साधनचतुष्टय करके सम्पन्न जो उत्तमाधिकारी को पराविद्या (ब्रह्मविद्या) कि जिसकरके अक्षरब्रह्मकी प्राप्ति होतीहै तिसके श्रवणार्थ चतुर्थ पंचम और षष्ठ इन तीनों प्रश्नोंका प्रारम्भ करते हैं ॥

१ ॥ हे सौम्य! 'अथ हैनं सौर्य्यायणीगार्ग्यःपप्रच्छ' < तिसके पश्चात् इसको सौर्य्यमुनिकापुत्र गार्ग्यनामामुनि प्रश्न करताभया > अर्थात् कौसल्यनाममुनिके समाधान होने के पश्चात् सौर्य्यमुनिका पुत्र गार्ग्यनामवाला मुनि इस उत्तरदाता सर्वज्ञ अपने आचार्य्य पिप्पलादमुनिको पूंछताभया ॥ यहां अभिप्राय यह है कि पूर्वके प्रथम, द्वितीय, और तृतीय इन तीनों प्रश्नों से संसार रूप व्याकृत 'अर्थात् कार्यमय जगत् के अन्तर्गत साध्य साधनमय, अर्थात् कर्म उपासना और तिनके फलमय, अनित्य सर्व प्राणरूप अपरब्रह्मकी विद्याके विषयको समाप्तकरके अब असाधनरूप प्रमाणोंकी प्रवृत्तिसे रहित अर्थात् अप्रमेय मनका

अगोचर इन्द्रियोंका अविषय अर्थात् कार्यभाव रहित शिव शान्त अविकारी अक्षर सत्य पर विद्याकरके गम्य बाहरभीतर अजन्मा पुरुषनामवाला परब्रह्मकी विद्याका विषयरूप जो वस्तु सो कहनेके योग्यहै । एतदर्थ अग्रिम ४-५-६-इन तीन प्रश्नोंका प्रारम्भ करते हैं ।हे सौम्य![इसप्रकार सामान्यरीत्या आगेकहने के तीनों प्रश्नोंका सम्बन्ध कहके अब केवल चतुर्थप्रश्नके ही सम्बन्ध को कहतेहैं] तहां ऽ 'यथा सुदीप्तात् पावकाद्विस्फुलिंगाः सहस्रशः प्रभवन्ते स्वरूपाः । तथाऽक्षराद्विविधा सौम्यभावाः प्रजायन्ते तत्र चैवापियन्ति' < जैसे प्रज्वलित अग्निसे अग्निके अवयव चिनगारी अनेक प्रकारकी सहस्रावधि निकलती हैं । हे सौम्य ! तैसे ही अक्षर (परब्रह्म) से अनेक प्रकार के पदार्थ, उपजते हैं और तहांही लीन होते हैं > इसप्रकार मुण्डक उपनिषद्के द्वितीयमुंडककी प्रथम श्रुतिमें कहाहै ।ऽ कौनसे वो सर्वभाव हैं जो अक्षर ब्रह्मसे उपजते हैं । वा किसप्रकार वे भाव विभागको पायके तहां ही लीनहोते हैं । और किस लक्षणवाला वो अक्षरब्रह्म है । इस अर्थके श्रवणकरनेकी इच्छासे अब गार्ग्यनामामुनि प्रश्नोंको प्रकट करता भया ॥ गार्ग्यउवाच 'भगवन्नेतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति कान्यस्मिन् जाग्रति कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति' < हे भगवन्! पुरुषविषे कौन सोवताहै (और) कौन इस विषे जागताहै (और) जो यह देव स्वप्नोंको देखता है सो कौनहै >ऽ हे भगवन् इस मस्तक हाथ पांव आदि अंगोंवाले शरीररूप पुरुष विषे कौनसे करण अर्थात् मनआदि अन्तःकरण और चक्षुरादि बाह्यकरण इनमेंसे कौनसे करण अपने व्यापार से उपरामरूप निद्राको करते हैं । और कौनसे करण इस पुरुष विषे अपने व्यापारके करने रूप जागरण को करते हैं। और कार्य और करणरूप देवताओं के मध्य जो यह देव स्वप्नों को देखता है सो कौन है । अभिप्राय यहहै कि जाग्रत् के देखने से निवृत्तभये पुरुषको स्वशरीर के भीतर जो जाग्रत्वत् ही दर्शनादि हैं तिस

को स्वप्न कहते हैं; सो तिसका क्या कार्य्य देह और प्राण रूप देवसे निर्वाह करते हैं, अथवा करण (मनआदि) रूप किसी भी देवसे निर्वाह करते हैं। और ८ 'कस्यैतत् सुखं भवति' ८ यह सुख किसको होताहै ॰ ॰ जाग्रत् और स्वप्नके व्यापारके निवृत्तहुये प्रसन्न और विषयके अभावमात्र से ही देखनेयोग्य और विनाश रहित आत्माका स्वरूप भूत जो यह सुख है सो किसको होता है। और ८ 'कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्ति' ८ किस विषे वह सर्व लीनहोते हैं ॰ ॰ जिसकालविषे जाग्रत् स्वप्नके व्यापार से निवृत्त भये सर्व जीव, जैसे मधु विषे रस, अर्थात् जैसे मधुकर मक्षिका के उदर विषे सर्व रस तद्वत्, और समुद्र में प्रवेश को प्राप्त भई नदियोंवत्, किसविषे एकताको प्राप्तहो के विवेचन के अयोग्य हुये लीन होते हैं। अर्थात् [इस चतुर्थ प्रश्न विषे अक्षर (परमात्मा) के स्वरूपको ही श्रवण करने की इच्छा होने से तिसके निर्णयहोने के अर्थ 'कानि स्वपन्ति' ८ कौन सोवताहै ॰ ८इत्यादि पांचप्रकार के आवान्तर प्रश्नवाला जो प्रश्नहै, सो जाग्रदादि अवस्था के भिन्न अवस्थाओं के धर्मीविशेषके निर्णयार्थ है। ८अन्यथा विचारने से उन जाग्रदादि अवस्थाओं को आत्मा के धर्म होनेको शंकाके होने से तिस आत्मा के निर्विशेष भावके निर्णयकी असिद्धिहैं। ॰ तहां प्रथम प्रश्नकरके जाग्रत्का धर्मीपूछा ८क्योंकि स्वप्नअवस्थामेंजिसके व्यापारकी निवृत्तिकेहोनेसेजाग्रत् नहींहै सो तिसजाग्रत्का धर्मी है इसप्रकार निश्चयकरने को शक्य है ताते॥ और द्वितीय प्रश्नकरके तीनोंही अवस्था विषे शरीरका रक्षण ॰ होना किसके धर्म से है, यह प्रश्न किया ८क्योंकि जागते हुये और व्यापारों से निवृत्त भये प्राणकोही शरीरका रक्षक होने का संभव है ताते॥ ॰ और तृतीयप्रश्न करके स्वप्न के धर्मी के अर्थ प्रश्न किया॥ और चतुर्थ प्रश्नकरके सुषुप्तिका धर्मी पूछा। क्योंकि 'सुखमहमस्वाप्सामिति' ८ मैं सुख जैसे होय, तैसे, सोयाथा ॰ इसप्रकारके सुषुप्तिसे जाग्रत्भये पुरुषको स्मरण के

होने से सुखके सुषुप्तके साथ सम्बन्ध है ऐसा जानाजाताहै तातें । और सुषुप्ति अवस्था बिषे प्रकाशमान जो यह (इदं) अंगुली निर्देशवत् प्रकट सुख है सो, मैं सुख से सोया था, इस स्मरण का मूलभूत है । अर्थात् जाग्रत्भये जो सुषुप्ति के सुखका स्मरण है सो सुषुप्ति के आनन्द के आश्रय है तातें सुषुप्ति का सुख जाग्रत् भये सुखकी स्मृति का मूलभूतहै । एतदर्थ चतुर्थप्रश्न से सुषुप्तिका धर्मी पूंछा ॥ और पंचम प्रश्नकरके तीनों अवस्था करके रहित और तीनोंही अवस्थाके स्थितिकी " भूमा " भूमीरूप तुरीय नामवाला अथवा तुरीयरूप अक्षर पूंछा ॥ यहां ' तस्मिन् काले ' ' तिस कालबिषे ' इसप्रकार आरंभ किये हुये पंचम प्रश्नकरके यद्यपि तुरीय पदके अर्थही प्रश्नहै सुषुप्तिके अर्थ नहीं तथापि संसार दशाबिषेसर्व उपाधिसे रहितजो तुरीयअवस्था है तिसके अभावभये से किसी न किसी उपायसेही उस तुरीय पदका देखावना होताहै तातें ,उस सुषुप्तिवाले पुरुषवत् ज्ञानके हुये भी, अर्थात् जैसे सुषुप्तिअवस्थावाले को सुखरूपका प्रकट ज्ञानहोताहै, तिसकेहोतेहुये भी तहां (सुषुप्तिमें) अन्यउपाधियों से रहित होनेकरके तहांही सर्व उपाधियोंके विवेकके करने से तुरीयपदका देखना सुगमहोताहै तातें तिस सुषुप्तिकालबिषे तुरीय पदके अर्थ सर्व्वके लयका कथन है । और यहां सुषुप्ति अवस्था बिषे सर्वप्रकारके लयके देखावनेका अभावहै, तातें भेदज्ञानरूप विवेकके अभावमात्रसे ' मधुबिषे रस और समुद्रबिषे नदियांवत् यह दोनों दृष्टान्तहैं अर्थात् मधुबिषे रसको और समुद्र बिषे नदियोंको यह विवेक नहीं रहता जो हम अमुकवृक्ष के रस और अमुकनदीकाजल है । इस अभिप्रायसे (विवेचनके अयोग्य ऐसा भाष्यमें कहाहै) । एतदर्थ पूर्व विवेकके अयोग्य हुये पीछे लीन होतेहैं । जैसे जलमें डूबता प्रथम दर्शनके अयोग्यहुये पीछे डूबताहै तैसे ॥ इत्यर्थः ॥ शंका ॥ इस पंचमप्रश्नकरके भी अविद्याकी वासनासे विवेचनकरनेको अयोग्यहुआ सुषुप्ति के धर्मीके

अर्थ ही प्रश्न किया होगा ॥ समाधान ॥ यह शंका करने योग्य नहीं, क्योंकि 'सपरेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते' < सो परमात्मारूप अक्षरविषे लयको पावते हैं इसप्रकार आगे इसही प्रश्न के नवम वाक्यके अन्तविषे कहेंगे ताते । और सुषुप्ति में अज्ञान विषेही लय होता है ताते । और 'एषहिद्रष्टा' < यहही द्रष्टा है > इत्यादि इस प्रश्न के नवम वाक्य की आदि में कहे अज्ञान विषे प्रतिबिम्बित भोक्ता जीव के भी अक्षरविषे लयका कथन है ताते । और 'अच्छाय' < छाया रहित > अर्थात् अज्ञान रहित, यह इसही प्रश्न के दशम वाक्यविषे अज्ञान के अभाव का कथन है ताते । एतदर्थ इस < ['कस्मिन्नु सर्वे प्रतिष्ठिता भवन्ति' < किस विषे सर्व लय होते हैं > > पंचम प्रश्न करके तुरीयरूप अक्षरही पूछा है । इतिभावः] शंका ॥ कार्य कारण से व्यतिरिक्त (जुदा) किसी एक लय के आधार से सामान्यरीति करके जानेहुये, किस विषे लय होता है, ऐसा विशेषार्थ प्रश्न उक्तहै । और यहां जिस करके उस लय के आधारका सामान्यपने करके ज्ञान नहीं भया है तब तिसके विशेष स्वरूप के अर्थ प्रश्न कैसे घटेगा किन्तु न घटेगा । और जो ऐसा कहो कि लयको आधार सहित होने करके सामान्यपने से तिस लयके आधारका ज्ञान भया है । सो कहना बने नहीं, क्योंकि तिस तिस कार्य घटादिकों का उपादान मृत्तिकादि अचेतनों कोही तिन घटादिकों के आधार होने करके तिन मृत्तिकादिकों से पृथक् चेतनरूप आधार की असिद्धि है । 'एतदर्थ यहां वादी शंका करता है] कि < जैसे त्याग किये दात्रि (दराति धान्य आदिक काटनेका शस्त्र) आदि करणोंवत्, अपने २ व्यापार से निवृत्त भये इन्द्रियादि करण पृथक् २ ही अपने २ आत्म (कारण) स्वरूपविषे स्थित होते हैं, ऐसा मानना युक्त है, एतदर्थ यहां सुषुप्ति को प्राप्त होके पुरुषों के करणों (इन्द्रियों) का किसी भी विषे एकता भावके प्राप्ति की आशंका की प्राप्ति कहां से होगी किन्तु न होगी ॥ समाधान ॥ हे वादी ! प्रश्न

तस्मै सहोवाच । यथा गार्ग्यमरीचयोऽर्कस्यास्तंगच्छन्तः सर्व्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति । ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्त्येवं ह वैतत्सर्वं परे देवे मनस्येकीभवति । तेन तर्ह्येष पुरुषो न शृणोति न पश्यति न जिघ्रति न रसयते न स्पृशते नाभिवदते नादत्ते नानन्दयते न विसृजते नेयायते स्वपितीत्याचक्षते ॥ २ । ४३ ॥

करनेवाले की यह शंका (, कि किस बिषे सब लय होते हैं,) युक्तही है, क्योंकि जिस करके जाग्रत्‌बिषे संघात रूप भये करण (इन्द्रियादि) सो अपने स्वामी (संघाताभिमानी) के अर्थ होते हैं ताते परतन्त्र हैं । और एतदर्थ ही सुषुप्तिबिषे भी एकत्र हुये करणों (इन्द्रियों) का परतन्त्र भाव से ही किसी न किसी वस्तु बिषे मिलना युक्त है एतदर्थ आशंका के अनुसार ही यह प्रश्न है । अर्थात् अन्तःकरण बिषे विद्यमान जे शंका तिसके अनुसार वाणी करके कहा यह प्रश्न है और (यहां लयरूप विशेषण करके युक्त जो सोपाधि आत्मा तद्विषयक प्रश्नहीं , किन्तु, जैसे काक (कौआ) करके उपलक्षित देवदत्त का गृह, तैसे सर्व के लयरूप उपलक्षण करके लक्षित जे शुद्धआत्मा तद्विषयक प्रश्न है । इस तात्पर्य से कहते हैं], यहां तो कार्य और कारण का संघात है सो सुषुप्ति और प्रलयकाल में जिस बिषे लीन होता है 'स कोनुस्यादिति' (सो कौन है) इस प्रकार जानने की इच्छा वाले का ('कस्मिन्नु सर्व्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति' (किसबिषे सर्व भली प्रकार लीन होता है)) जो यह प्रश्न है सो शंकानुसार युक्त ही है ॥ १ । ४२ ॥

२॥ हे सौम्य ! उक्तप्रकार जब प्रश्न किया तब 'तस्मै सहोवाच' (तिसके अर्थ सो स्पष्ट कहता भया) अर्थात् तिस गार्ग्यमुनिनामवाले अपने शिष्य के अर्थ सो पिप्पलादमुनिनामवाले सर्वज्ञ आचार्य कहते भये कि 'यथा गार्ग्यमरीचयोऽर्कस्यास्तंगच्छन्तः

सर्व्वा एतस्मिंस्तेजोमण्डल एकीभवन्ति' < हे गार्ग्य ! जैसे सूर्य्य के सर्व किरण अस्तहुये इस तेजोमण्डल विषे एकत्र होते हैं > हे गार्ग्य ! जो तैंने प्रश्न किया है तिसका उत्तर सावधानतासे श्रवणकर । जैसे सूर्यके सर्वकिरण अस्ततांको प्राप्तहुये इस तेजोमंडल विषे एकताको पावते हैं । और < ' ताः पुनः पुनरुदयतः प्रचरन्ति ' < सो पुनः पुनः उदयको पाये हुये फैलते हैं > > सो तिसही सूर्य्यके किरण वारंवार उदयताको पायेहुये सर्वओरको फैलतेहैं < ' एवं ह वै तत् सर्व्वं परे देवे मनस्येकीभवन्ति ' < ऐसे प्रसिद्ध यह सर्व परम देव मन विषे एकत्र होतेहैं > > जिस प्रकार यह दृष्टांतहै, इसप्रकार यह प्रसिद्ध जो विषय और इन्द्रियादिकों का समूह और चक्षुरादि देवताओंको, मनके आधीन होनेसे परमोत्कृष्ट देव (प्रकाशवान्) जो मनहै तिसविषे, < ' जैसे तेजोमय मंडल (सूर्य्य) विषे किरणोंकी एकता होती है तैसे ' > स्वप्नकालमें एकताको प्राप्त होते हैं । और जाग्रत्की इच्छावाले पुरुषके विषय और इन्द्रियादि, < ' जैसे सूर्य्यमण्डलसे निकले हुये किरण अपने प्रकाश कर्त्तव्यरूप व्यापारको करते हैं तैसे ' > मनसे निकसेहुये अपने २ व्यापारको करते हैं । और जिसकरके स्वप्नकालमें शब्दादि विषयों के ज्ञानके साधक जे श्रोत्रादि इन्द्रियां सो मनविषे एकताको प्राप्तहुयेवत् अपने करणस्वरूप व्यापारसे निवृत्त होतेहैं < ' तेन तर्ह्येष पुरुषो, न शृणोति, न पश्यति, न जिघ्रति, न रसयते, न स्पृशते, नाभिवदते, नादत्ते, नानन्दयते, न विसृजते, नेयायते, स्वपितीत्याचक्षते ' < तिससे स्वप्नकाल विषे यह पुरुष, श्रवण करतानहीं, देखतानहीं, गंध लेता नहीं, रसकास्वाद लेतानहीं, स्पर्शकरता नहीं, बोलतानहीं, ग्रहणकरता नहीं, आनन्दको पावता नहीं, मलमूत्रको त्यागता नहीं, चलता नहीं, (किन्तु) सोवता है ऐसा कहते हैं > तिसकरके तिस स्वप्नकालविषे यह ब्रह्मदत्तादि नामवाला शरीररूप पुरुष, सुनता नहीं, देखता नहीं, गंध लेता नहीं, रसादिकोंका स्वाद लेता नहीं, स्पर्श

प्राणाग्नय एवैतस्मिन् पुरे जाग्रति । गार्हपत्योह वा एषोऽपानो व्यानोऽन्वाहार्य्यपचनो यद्गार्हपत्यात्प्रणीयते प्रणयनादाहवनीयः प्राणः ॥ ३ । ४४ ॥

करता नहीं, कुछभी बोलता नहीं, कुछभी लेता नहीं, विषयजन्य आनन्द को प्राप्त होता नहीं, मलमूत्रादिकों को त्यागता नहीं, कहीं को भी चलता नहीं, किंतु उसको सोवता है ऐसा कहते हैं॥२।४३॥हे सौम्य ! यहां पर्यन्त 'एतस्मिन् पुरुषे कानि स्वपन्ति' <इस शरीर बिषे कौन सोवताहै> इस प्रथम प्रश्न का उत्तर कहा ॥

३ ॥ हे सौम्य ! अब 'कान्यस्मिन् जाग्रति' < इस शरीर नामक पुरविषे कौन जागताहै > यह जो गार्ग्यमुनि का द्वितीय प्रश्नहै तिसका उत्तर जो पिप्पलादाचार्यने कहा है तिससो वस्तु श्रवणकरो॥पिप्पलादउवाच॥ हे गार्ग्य ! 'प्राणाग्नय एवैह प्रश्न पुरे जाग्रति' < इस पुरविषे प्राणरूप अग्निही जागते हैं > अर्थात् चक्षुरादि सर्व करणों को सो ये (मनबिषे एकत्र) हुये इस नव किंवा दश किंवा एकादश द्वारवाले देहरूप पुरविषे प्राणादि नाम वाले पांच वायुही, अग्निवत्, अग्नि है सोई जागते हैं ॥ हे सौम्य! अब प्राणों को अग्नि की समता कहते हैं तिसको श्रवण करो ॥ 'गार्हपत्यो हवा एषोऽपानो' < यह प्रसिद्ध अपान है सो गार्हपत्याग्नि है > अर्थात् यह जो प्रसिद्ध अपान वायुहै सोई गार्हपत्य नामवाला अग्नि है ॥ प्र० ॥ किस प्रकार है ॥ उ० ॥ 'गार्हपत्यात्प्रणीयते' < गार्हपत्य नामवाले अग्नि से निकलते हैं > हे सौम्य ! जैसे अन्य अग्नि के रचनेवाले गार्हपत्य नामवाले अग्नि से, नित्य के अग्निहोत्रके काल से अन्य अग्निहोत्र के कालविषे तिस गार्हपत्य अग्नि से अन्य आहवनीय नामवाला अग्नि निकालते हैं तैसे जिस करके सुषुप्ति अवस्था को प्राप्त भये पुरुषके, गार्हपत्याग्नि भावसे कहा जो अपान नामवायु तिसके भीतरजानेसे प्राणवायु निरावरणहोता है तिसकारण से, मेघोंमें

यदुच्छ्वास निःश्वासावेतावाहुती समंनयतीति स समानः। मनो हवाव यजमान इष्टफलमेवोदानः स एनं यजमानमहरहर्ब्रह्म गमयति ॥ ४। ४५ ॥

से निकसे चन्द्रमावत्, अपानवायु से निकसे हुयेवत् मुख और नासिकारूप द्वारसे बाहर (ऊपर) को चलताहै एतदर्थ अपान वायु गार्हपत्य अग्नि के स्थानापन्नहै। और ('आहवनीयः प्राणः' < प्राण आहवनीय है >) जैसे गार्हपत्याग्निसे निकसनेवाला आहवनीय अग्नि है, तैसेही अपान वायु से निकसनेवाला प्राण वायु है, एतदर्थ प्राणवायु आहवनीय नामवाले अग्नि स्थानापन्न है और ('व्यानोऽन्वाहार्य्यपचनो' < व्यानदक्षिणाग्निहै >) व्यान वायुहै सो हृदयरूप देशसे दक्षिणवायु के छिद्रद्वारा निकलता है इसही करके सो दक्षिण दिशाका सम्बन्धी है एतदर्थ वो दक्षिणाग्नि के स्थानापन्न है ॥ ३। ४४ ॥

४॥ हे सौम्य! अब यहां इस चतुर्थवाक्य करके अग्निहोत्रके हवनका कर्त्ता ऋत्विक्रूप होता कहते हैं ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे गार्ग्य! 'यदुच्छ्वासनिःश्वासावेतावाहुती समंनयतीतिससमानः' < इन उच्छ्वास और निःश्वासरूप आहुतिको समप्रवृत्तकरताहै सो समान है > अर्थात् जिस करके उच्छ्वास और निःश्वास यहदोनों आहुति हैं। क्योंकि अग्निहोत्र की दो आहुतिवत् सर्वदा दोनों की संख्या की समताहै। और तिसकरके यह दोनों आहुतिरूप हैं। और जो इन उच्छ्वास और निःश्वासरूप आहुतिको, अग्निहोत्रके हवनकर्त्ता होतावत्, शरीर की स्थिति के निमित्त समभावसे जो वायु प्रवृत्तकरता है, तिसकरके सो वायु दोनों आहुति का प्रवर्त्तक होने से पूर्वोक्ति के अनुसार अग्निस्थानापन्न हुआ २ भी होतारूप है, ([शंका 'प्राणाग्नय' इसवाक्य से सर्व प्राणोंको अग्नित्व कहाहै, तब यहां समानवायु को होताकर के कैसे कहतेहैं ॥ समाधान ॥ हे सौम्य ! यद्यपि 'प्राणाग्नयएवै-

तस्मिन् पुरे जाग्रति ' < पांचप्राणरूप अग्निही इसपुर विषे जागते हैं > इस तीसरे वाक्य विषे समानवायु को भी अग्निस्थानापन्न कहाहै सो सत्य है, तथापि < ,जैसे अग्निहोत्रविषे हवन कर्त्ता ब्राह्मण दोनों आहुतियोंको आहवनीय नामवाले अग्नि के प्रतिसमभावसे हवनकरताहै, तैसे > यह समानवायु उच्छ्वास और निःश्वासरूप दोनों आहुतियों को शरीर की स्थिति रहने के अर्थ समता करके प्रवृत्त करे है, एतदर्थ आहुति का प्रवर्त्तक होने से तिस समान वायु को होता नामसे कहते हैं । और समान वायु को होतापने के सिद्धभये जो अग्निपने का कथन है तिसका ,छत्रीवाले जातेहैं, इस वाक्य से जिसके पास छत्री है तिसका और तिससे भिन्न दूसरे का दोनों का ग्रहण होता है । तैसेही अग्निरूप और तिससे भिन्न होतारूप दोनों के ग्रहण विषे यह लाक्षणिक अर्थ है] ॥प्र०॥ यह होता रूपवायु कौनसा है ॥उ०॥ सो होतारूप समान नामवाला वायु है । [तीनों अवस्थाओं से रहित और तीनों अवस्थामें वर्त्तमान उच्छ्वास और निःश्वासरूप प्राणोंकी अग्निहोत्र के अवयव रूपताके सम्पादन का उपासना रूप प्रयोजन नहीं, क्योंकि यहां निर्विशेष आत्माका प्रसंगहै ताते । और यहां तिस प्राणोंकी विधिका अभावहै ताते । किन्तु इन्द्रियां सोवें हैं और प्राण जागे हैं ऐसा कहा है । ताते यहां त्वं पद के शोधनरूप ज्ञानकी स्तुतिहीहै] एतदर्थ विद्वान् (कर्मउपासना के समुच्चय करनेवाले) का स्वप्न भी अग्निहोत्र का हवनही है । ताते विद्वान् कर्म से रहित नहीं ऐसा मानना योग्य है । और ' मनोहवाव यजमानः ' < मन प्रसिद्ध यजमानहै > स्वप्न विषे पंचप्राणरूप अग्निके जागतेहुये बाहर के करणोंको और विषयों को लय करके , अग्निहोत्र का फल जो स्वर्ग तद्वत्, सुषुप्तिकाल विषे ब्रह्मके अर्थ जाने को इच्छाकरता हुआ मन यजमानवत् प्रसिद्धजागता है । अर्थात् सो मन , जैसे यजमान यज्ञकी सर्व ।: ग्री में प्रधान होता है तैसे, कार्य और करणों विषे प्रधान

अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति देशादिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति दृष्टञ्चादृष्टञ्च श्रुतञ्चाश्रुतञ्चानुभूतञ्चाननुभूतञ्च सर्व्वः पश्यति सर्व्वः पश्यति॥५।४६॥

होने करके व्यवहार करनेसे, और जैसे यजमान स्वर्गार्थप्रस्थान पावता है तैसे, ब्रह्मरूप स्वर्ग के ताईं प्रस्थान को पाया होने से यजमान है। ऐसा जानना और (इष्टफलमेवोदानः' < उदान यज्ञका फलही है >) उदानवायु जो उत्क्रमण में प्रधान है सो यज्ञका फलही है काहेते कि यज्ञके फलकी प्राप्ति उदान वायुरूप निमित्त वाली है ताते [अर्थ यह है कि यजमानको मरणके अनन्तर उदानवायुरूप निमित्तवाले यज्ञादिकोंके फलकी प्राप्ति है] ताते उस उदानवायु को यज्ञों के फलका निमित्त कारण होने से और कारण बिषे कार्य के आरोप होने से उदानवायुको इष्टफल करके कहा है ॥ प्र० ॥ उदानवायु को यज्ञका फलपना कैसे है ॥ उ० ॥ 'सएनं यजमानमहरहर्ब्रह्मगमयति' < सो इस यजमान को दिनदिन बिषे ब्रह्म के अर्थ प्राप्त करता है > सो उदान वायु इसमन नामवाले यजमान को स्वप्नवृत्तिरूपसे भी चलायमान करके नित्य नित्य सुषुप्ति कालबिषे अक्षरब्रह्मरूप स्वर्ग के ताईं ही प्राप्त करे है। अर्थात् [यद्यपि दिनदिनाबिषे जो ब्रह्मकी प्राप्ति होतीहै सो यज्ञका फल नहीं काहेते कि यज्ञ से रहित पुरुषको भी तिससुषुप्ति बिषे उस ब्रह्मकी प्राप्तिहोतीहै ताते। तथापि ब्रह्मकोही सर्वयज्ञों का फलपनाहै, ताते सुषुप्तिरूप द्वारकरके तिस ब्रह्म के प्रापक उदानवायुको इष्टफलकी प्रापकताहै, यहभावहै] एतदर्थ उदानवायु यज्ञके फल के स्थानापन्न है ॥ इतिसिद्धम् ॥४।४५॥

॥ ५ ॥ शङ्का 'गार्हपत्यो हवा एषोऽपानो' < यह अपानवायु गार्हपत्य नामवाला अग्निहै > यहां से आरम्भकरके 'मनो हवाव यजमान' < मनरूपही प्रसिद्ध यजमान है > इस श्रुतिपर्यन्त

जो कहा है तिसकरके विद्वान् कर्मी नहीं होता इसप्रकार विद्वान् की स्तुति किया है ऐसा तुमने कहा सो अस्तु । परन्तु इस प्रकार तहां अग्निहोत्रादि कर्मों की प्रतीति से उदानवायुको यज्ञके फल स्थानापन्न कहाहै तिसकरके तो इस यज्ञ का फलपना नहीं है, क्योंकि तहां कर्म की अप्रतीति है ताते ॥ समाधान ॥ यहां यह भाव है कि, श्रोत्रादि इन्द्रियां स्वप्न बिषे सोवें (उपरामहोवें) हैं और प्राणही जागते हैं, इस स्वरूपवाली विद्यारूप विद्वत्ताहै तिस विद्वत्ताकी यहां स्तुति करते हैं । और इस उक्तविद्याको जागरण जो है सो श्रोत्रादि बाह्य इन्द्रियोंका धर्महै और शरीर का रक्षण करना प्राणका धर्म है ताते इनमें आत्मा का धर्म कोईनहीं इस प्रकारके स्वंपदके; विवेकरूप होनेसे उक्तविद्याकरके युक्तविद्वान् की स्तुति करने की योग्यताका सम्भवहै । और एतदर्थही प्राणका जो जागरण है सो विद्वान् और अविद्वान् दोनोंको समानही है तब अविद्वान्को त्यागकें विद्वान्कीही स्तुति कैसेहै, ऐसी जो रही शङ्का तिसका भी अभावभया; क्योंकि अविद्वान्का उक्त विद्याके अविवेकका अभावहै ताते, विद्वान्कीही स्तुति है । हे सौम्य! इस प्रकार विद्वान् को श्रोत्रादि इन्द्रियरूप करणों के उपरामकाल से आरम्भकरके यावत् पर्य्यन्त सुषुप्तिसे उत्थानको प्राप्त होताहै तावत्पर्य्यन्त सर्व यज्ञ के फल के अनुभव होने से अविद्वानोंवत् अनर्थ के हेतु नहीं । इस प्रकार यहां विद्वत्ताकी स्तुति करते हैं । और जिसकरके केवल विद्वान्केही श्रोत्रादि इन्द्रियां सोवे हैं, अथवा प्राणरूप पांच अग्नि जागते हैं, अथवा जाग्रत् और स्वप्न विषे मन अपनी स्वतन्त्रता को अनुभवकरता हुआ नित्य नित्य सुषुप्तिको प्राप्त होता है ऐसा नहीं ताते विद्वान्केही इन्द्रियादि उपरामादि होते हैं इसप्रकार विधान करना योग्य नहीं, किन्तु सर्व प्राणधारियोंको क्रम से जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति यह तीनों अवस्थाविषे जो गमन है सो समानही है । एतदर्थ यह विद्वान् की स्तुतिही सम्भवे है ॥ हे सौम्य! पूर्व जो गार्ग्यमुनिने तीसरा

प्रश्न किया था कि 'कतर एष देवः स्वप्नान् पश्यति' <कौनसा यह देव स्वप्नोंको देखता है> तिसका उत्तर पिप्पलाद मुनि कहते हैं कि हे गार्ग्य! 'अत्रैष देवः स्वप्ने महिमानमनुभवति' <यहां यह देव स्वप्नविषे महिमाको अनुभव करे है> अर्थात् प्रथम श्रोत्रादि इन्द्रियों के उपराम भये और देहकी रक्षार्थ प्राणादि पांचवायु के जागतेहुये सुषुप्ति की प्राप्तिसे पूर्व इस सन्धि में यह देव जैसे सूर्य्य अपनी किरणों को अपने बिषे लयकरता है तैसे, अपने स्वरूप बिषे लयकियेहैं चक्षुरादि करण जिसने, इसप्रकार हुआ स्वप्नबिषे विषय और विषयीरूप अनेक वस्तुओं को आत्म (अपने) भाव की प्राप्तिरूप महिमा को अनुभव करता है ॥ शंका ॥ महिमाके अनुभव करने बिषे अनुभव कर्त्ता को करण जो है सो मन है एतदर्थ सो मन स्वतन्त्र होनेसे कैसे अनुभव करताहै ॥समाधान॥ हे सौम्य ! क्षेत्रज्ञ आत्मरूप जो देव है सो स्वतन्त्र हुआ भी महिमा का अनुभव करता है यह दोष नहीं है। क्योंकि क्षेत्रज्ञ का जो स्वतन्त्रपना है सो मनरूप उपाधि का किया है। और परमार्थ से तो स्वयं क्षेत्रज्ञ न सोवता है न जागता है ताते तिस क्षेत्रज्ञ का जो जागना और सोवना है सो मनरूप उपाधिकृत ही है ॥ तथा च: 'सधीः स्वप्नोभूत्वा ध्यायतीवेत्यादि' <बुद्धि सहित हुआ, आत्मा, स्वप्नरूप हो के ध्यावते हुयेवत् होता है इत्यादि> बृहदारण्यक उपनिषद् बिषे कहा है। एतदर्थ देवशब्द करके उक्त मनको विभूत के अनुभव करने बिषे स्वतन्त्रपने का वचन युक्त ही है ॥ हे सौम्य ! 'कई एक वादी कहते हैं कि क्षेत्रज्ञ को स्वप्नकाल बिषे मनरूप उपाधि करके सहित हुये तिस क्षेत्रज्ञ को स्वयंज्योतिपने की प्रतिपादक श्रुति बाध को पावती है, सो बने नहीं। क्योंकि उनवादी पुरुषों को श्रुत्यर्थ के अज्ञान से भई भ्रान्ति है। और जिससे मनआदिक उपाधि करके जन्य जो स्वयंज्योतिपने आदिका व्यवहार है सोभी मोक्ष पर्यन्त सर्व अविद्या (अविद्वान्) का विषयही है। क्योंकि 'यत्र वा अन्यदिवस्यात्तत्रा-

न्योऽन्यत्पश्येन्मात्रं संसर्गस्त्वस्य भवति ' < जहां वा अन्यवत् होय तहां अन्य अन्य को देखे और इस आत्मा को विषयों से असम्बन्ध होता है > और ' यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत्तत्केन कंपश्येदित्यादिश्रुतिभ्यः ' <जहां तो इस (पुरुष) को सर्व आत्माही होताभया तहां किसकरके किसको देखे > इत्यादिक बृहदारण्य उपनिषद्के छठे अध्यायकी श्रुतिसे सिद्धहै ताते उक्त जो शंका है सो मंद ब्रह्मवेत्ताओंकी ही करीहुई है , यथार्थ एकात्मवेत्ता की नहीं, ॥ शंका ॥ हे भगवन् ! जैसा आप कहते हो तैसा होने से ' अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिः ' < यहां यह पुरुष स्वयंज्योति है > इस श्रुति विषे ' अत्र ' < यहां > ऐसा जो विशेषण है सो व्यर्थ होवेगा ॥ समाधान ॥ हे सौम्य ! हे वादी ! यह तुम्हकरके अल्पही कहते हैं जिसकरके ' यएषोऽन्तर्हृदय आकाशस्तस्मिञ्छेतेति ' < जो यहअन्तर हृदय विषे आकाश है तिसविषे (आत्मा) रहता है > इस श्रुति करके अन्तर हृदय के परिच्छेद के भये अवश्य करके आत्माका स्वयंज्योतिपना बाधको पावेगा ॥ और जो कहे कि यद्यपि यह उक्त दोष होगा, यह आपका कहना सत्यही है, तथापि स्वप्नविषे आत्मा को केवल (मनके अभाव युक्त) पनेसे स्वयंज्योति होने करके तिस आत्माका आधा ओज (प्रतिबन्धक) दूरभया और [अवशेष रहा जो आत्मा तिसका बोध सुषुप्ति विषे होगा यह तेरा अभिप्राय है] सो कहना बने नहीं । क्योंकि वहां (सुषुप्तिविषे) भी ' पुरीतातिशेतेति ' < पुरीतति नामवाली नाड़ी विषे रहता है > इस श्रुति करके पुरीतति नामवाली नाड़ियों का सम्बन्ध रहता है ताते ॥ और जो ऐसा कहे कि वहां स्वप्न में भी पुरुष को स्वयंज्योति होने से जब आधे ओजके दूर होने का अभिप्राय मिथ्याही है ॥ तब 'अत्रायं पुरुषः स्वयंज्योतिर्भवति' < यहां यह पुरुष स्वयंज्योति होता है > यह कहना कैसे बनेगा। और जो कहो कि अन्य शाखान्तर रहने से यह श्रुति अन्य श्रुति की अपेक्षा से रहती है सोभी बने नहीं क्योंकि सर्व श्रुतियों

के अर्थकी जो एकता है सोई इच्छित है ताते। और सर्व वेदान्त शास्त्रों का अर्थरूप एकही आत्मा आचार्य करके जनावने को और जिज्ञासुओं करके जानने को इच्छित है। एतदर्थ श्रुति को यथार्थ तत्त्व की प्रकाशक होने करके स्वप्नबिषे आत्मा के स्वयं ज्योतिपने का संभव कहने को युक्त है। ऐसे वादी ने कहा। तब सिद्धान्ती कहे हैं कि हे वादी! जब तू इसप्रकार जानता है तब अपने सर्व अभिमान को त्याग के इस बृहदारण्य की श्रुतिका अर्थ श्रवण कर, क्योंकि अभिमान के होते तो सौवर्ष पर्यन्त भी अपने को पण्डित माननेवाले पुरुषों करके श्रुतिका अर्थ जानने को शक्य नहीं। ताते यहां श्रुतिका यह अर्थ है कि जैसे हृदयाकाश विषे और पुरीतति नामवाली नाड़ियों बिषे स्वप्नको प्राप्त हुये आत्माका उन स्थान और तिनके धर्म से सम्बन्धका अभाव है, ताते आत्मा उन्हों करके (चन्द्रशाखा न्याय प्रमाण) विवेचन करके देखावने को शक्य होता है। एतदर्थ आत्मा की स्वयं ज्योतिपना बाध को पावता नहीं। इसप्रकार अविद्या और काम और कर्मरूप निमित्तों से उद्भवता को प्राप्त भई जो वासना तिस वासनावाले मनविषे कर्मरूप निमित्तवाली वासनामय अविद्या से अन्य को अन्यवस्तुवत् देखनेवाले, और समस्त कार्य और करण से विवेचन किये हुये द्रष्टा को दृश्यरूप वासना से पृथक् होने करके तिसका स्वयं ज्योतिपना, नित्य गर्वित नैयायिकों से भी निवारण करनेको शक्य नहीं। ताते करणों के मनविषे लीन हुये और मन के अलीन हुये मनोमय देव स्वप्नों को देखता है। यह आचार्य (पिप्पलाद) ने श्रेष्ठ कहा है ॥ प्र० ॥ हे प्रभो! कैसे महिमा को अनुभव करता है ॥ उ० ॥ हे सौम्य! 'यद्दृष्टं दृष्टमनुपश्यति श्रुतं श्रुतमेवार्थमनुशृणोति' < जिसको देखाहै (तिसको) देखेहुयेवत् मानता है (और) सुने अर्थ को पीछे सुने हुयेवत् मानता है> अर्थात् जिस मित्र वा पुत्रादिकों को पूर्व देखता भया है तिनकी वासना करके युक्त भया, पुत्र वा मित्रादिकों की वासना

स यदा तेजसाऽभिभूतो भवति अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यत्यथ तदैतस्मिञ्छरीरे एतत्सुखं भवति ॥ ६ । ४७ ॥

से उत्पन्न हुये दृष्टवस्तुको पुत्र और मित्रवत् अविद्या करके देखे हुयेवत् मानता है। तिसही प्रकार जो अर्थ सुना है तिसही सुने अर्थ को तिसकी वासनावश पीछे सुनेहुयेवत् मानता है । और ऽ 'देशदिगन्तरैश्च प्रत्यनुभूतं पुनः पुनः प्रत्यनुभवति' ‹ देश से और दिशान्तर से बारम्बार अनुभव किये को अनुभव करता है›ऽ नदी के तट आदि अन्य देशों से और पूर्वादि अन्य दिशाओं से बारम्बार अनुभव किया जो वस्तु तिनको अविद्या करके अनेक दिनों विषे वर्त्तमान अनेक स्वप्न बिषे अनुभव करता है। और ऽ 'दृष्टञ्चादृष्टञ्च श्रुतञ्चाश्रुतञ्चानुभूतञ्चाननुभूतञ्च सर्वं पश्यति सर्वः पश्यति' ‹ देखे और न देखे, सुने और न सुने, अनुभव किये और न अनुभव किये सर्व को देखताहै सब हुआ देखता है › ऽ तैसेही अन्य जन्म विषे देखे और इस जन्म बिषे न देखे वस्तु को और तैसेही अन्य जन्मबिषे सुने और इस जन्म बिषे न सुने वस्तु को और तैसेही अन्य जन्मबिषे मन करकेही अनुभव किये और इस जन्मबिषे केवल मनसे न अनुभव किये अर्थात् जलादि सत्यरूप और मरीचिजल आदिक असत्यरूप, किन्तु बहुत कहने से क्या है, इन सर्व वस्तुको जो देखता है सो सर्व मनकी वासनारूप उपाधिवाला हुआ देखताहै इसप्रकार सर्व करणरूप मनोमय देवस्वप्नों को देखता है इतिसिद्धम् ॥ ५ । ४६ ॥

६ ॥ हे सौम्य ! अब गार्ग्यमुनिका जो चतुर्थप्रश्न है कि, यह सुख किसको होता है, तिसका उत्तर जो पिप्पलादमुनि ने कहा है तिसको भी श्रवण करो ॥ पिप्पलादउवाच ॥ हे गार्ग्य ! 'स यदा तेजसाऽभिभूतोभवति' ‹ सो जिसकाल बिषे तेज करके पराभव होता है › अर्थात् सो मनरूप देव जिस कालबिषे चिन्तानामवाले सूर्य के तेजकरके नाड़ीरूप शय्याविषे सर्वओरसे परा-

स यथा सौम्य वयांसि वासो वृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते । एवं ह वै तत्सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ७ । ४८ ॥

भवको प्राप्त होता है अर्थात् , वासनाके उद्भवके द्वाररूप स्वप्न-भोग के दाता जे कर्म तिनके तिरस्कार करके युक्त होता है तब इन्द्रियों सहित मनके वासनारूप किरण हृदय बिषे लीन होते हैं । तब मन वनके अग्निवत् सामान्यज्ञान अर्थात् चैतन्यरूपता करके सम्पूर्ण शरीरबिषे व्याप्त होके स्थित होता है; तब सुषुप्तिको प्राप्त होता है, तब ऽ 'अत्रैष देवः स्वप्नान्न पश्यति' ‹ यहां यह देव स्वप्नों को नहीं देखता › ऽ तिसकाल बिषे मन नामवाला देव स्वप्नों को देखता नहीं क्योंकि देखने के जे द्वारहैं सो तेजकरके निरोधको पावते हैं । और ऽ 'अथ तदैतस्मिञ्छरीरे एतत्सुखं भवति' ‹ पीछे तब इस शरीर बिषे यह सुख होता है › ऽ अर्थात् जो बाधरहित सामान्यरूपसे शरीरबिषे व्यापक प्रसन्नज्ञानरूप स्वरूप सुख है सो यह अर्थ है ॥ ६ । ४७ ॥

७॥ हे सौम्य ! [कहे प्रकार इस षष्ठवाक्य करके आनन्दमय कोश शब्दका वाच्य अस्पष्ट और मन आदिकों को वासनावाला ज्ञान, सुषुप्तिका धर्मी है, इस प्रकार गार्ग्यमुनिके 'कस्यैतत्सुखं भवति' ‹ किसको यह सुख होताहै › इस चतुर्थ प्रश्नका उत्तर पिप्पलाद मुनिने कहा ॥ अब इस सातवें वाक्यकरके गार्ग्यमुनिके 'कस्मिन्नु सर्वे सम्प्रतिष्ठिता भवन्तीति' इस पंचम प्रश्नका उत्तर, विवेकी सुगमतासे तुरीयस्वरूपों को विवेचन करके कहते हैं] इसकालबिषे अविद्या और काम और कर्मरूप कारणसे भये जे कार्य और करण सो निवृत्त होते हैं । और तिनके निवृत्तहुये उपाधियों से विपरीत भासमान जो आत्मास्वरूप सो अद्वैत एक शिव (सुखरूप) शान्त होता है एतदर्थ इसही सुषुप्ति अवस्था को पृथिवी आदिक भूत और अविद्यारचित तिनकी मात्रा के विवेक करके अक्षर ब्रह्मबिषे प्रवेशसे देखावनेको दृष्टान्त कहते हैं

पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा च चक्षुश्च द्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यञ्च घ्राणञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयितव्यञ्च त्वक् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च हस्तौ चादातव्यञ्चोपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च पायुश्च विसर्जयितव्यञ्च पादौ च गन्तव्यञ्च मनश्च मन्तव्यञ्च बुद्धिश्च बोधव्यञ्चाहङ्कारश्चाहङ्कर्तव्यञ्च चित्तञ्च चेतयितव्यञ्च तेजश्च विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च विधारयितव्यञ्च ॥ ८ । ४९ ॥

'स यथा सौम्य वयांसि वासो वृक्षं सम्प्रतिष्ठन्ते' < हे सौम्य ! जैसे पक्षी वासार्थ वृक्षके ताईं जाते हैं > अर्थात् पक्षी जो हैं सो निवासकरने के अर्थ वृक्षप्रति जाते हैं ॥ तैसे यह दृष्टान्तहै ऽ 'एवं हवै तत्सर्वं पर आत्मनि सम्प्रतिष्ठते' < ऐसे प्रसिद्ध सो सर्व परमात्माविषे जाताहै > ऽ इसही प्रकार प्रसिद्ध सो जो आगे कहैंगे सर्व जगत् अविनाशीरूप परमात्माविषे लय होताहै ॥ ७ । ४८ ॥

८ ॥ हे भगवन् ! जो सर्व जगत् परमात्माविषे जाता है सो कौन है ॥ उ० ॥ हे सौम्य ! इसको भी श्रवण करो 'पृथिवी च पृथिवीमात्रा चापश्चापोमात्रा च तेजश्च तेजोमात्रा च वायुश्च वायुमात्रा चाकाशश्चाकाशमात्रा' < पृथिवी और पृथिवी की मात्रा (गन्ध)। पुनः जल और जलकी मात्रा (रस) । पुनः तेज और तेजकी मात्रा (रूप)। पुनः वायु और वायुकी मात्रा (स्पर्श)। पुनः आकाश और आकाशकी मात्रा (शब्द)। अर्थात गंधादि तन्मात्रारूप अपंचीकृत पंच महाभूत सूक्ष्म। और पृथिव्यादि पंचीकृत महाभूत स्थूल। और ऽ 'चक्षुश्च द्रष्टव्यञ्च श्रोत्रञ्च श्रोतव्यञ्च घ्राणञ्च घ्रातव्यञ्च रसश्च रसयितव्यञ्च त्वक् च स्पर्शयितव्यञ्च वाक् च वक्तव्यञ्च हस्तौ

चादातव्यञ्चोपस्थश्चानन्दयितव्यञ्च पायुश्च विसर्जयितव्यञ्च पादौ च गंतव्यञ्च' < चक्षु और देखने योग्य वस्तु, श्रोत्र और सुननेयोग्य वस्तु, पुनः घ्राण और गन्ध लेने योग्य वस्तु, पुनः रसना और रस लेने योग्य वस्तु, पुनः त्वचा और स्पर्श करनेयोग्य वस्तु, वाचा और बोलनेयोग्य वस्तु, पुनः दो हाथ और लेने देने योग्य वस्तु, पुनः उपस्थ (लिंग) और आनन्द देने योग्य वस्तु, पुनः पायु (गुदा) और त्यागनेयोग्य वस्तु, पुनः दो पाद और चलने योग्य वस्तु > ऽ अर्थात् यहां ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां बाह्यकरण और तिनके विषयक हैं । और 'मनश्च मन्तव्यञ्च बुद्धिश्च बोधव्यञ्चाहंकारश्चाहंकर्त्तव्यञ्च चित्तञ्च चेतयितव्यञ्च तेजश्च विद्योतयितव्यञ्च प्राणश्च विधारयितव्यञ्च' < मन और मननकरने के योग्य वस्तु, पुनः बुद्धि और जानने योग्य वस्तु, पुनः अहंकार और अहं करने योग्य वस्तु, पुनः चित्त और चिन्तन करने योग्य वस्तु, पुनः प्रकाश और प्रकाशने योग्य वस्तु, पुनः प्राण और धारण करने योग्य वस्तु > अर्थात् उक्त मन और मनन करने योग्य वस्तु रूप तिसका विषय, और निश्चय आत्मकरूपा बुद्धि और जानने योग्य वस्तुरूप तिसका विषय और अभिमान आत्मक अन्तःकरणरूप अहंकार और अभिमान करने योग्य वस्तु रूप तिसका विषय, और चेतनावृत्त्यात्मक अन्तःकरणरूप चित्त और चिन्तन करने योग्य वस्तुरूप तिसका विषय, और त्वचा इन्द्रिय से भिन्नप्रकाशयुक्त चर्मरूप तेज और तिससे प्रकाश करनेयोग्य सोई तेजका रूप वस्तु तिसका विषय । और जिसको सूत्रात्मा कहते हैं ऐसा जो प्राण सो और तिस प्राणसूत्रात्मा करके धारण करने योग्य सर्वकार्य करण का संघातरूप यह पर अर्थात् अपने से इतरके अर्थ होने करके मिश्रित हुआ नाम-रूपात्मक जगत् तिसका उपाधिभूत इतना ही सर्व है ॥ ८ । ४६ ॥

९ ॥ हे सौम्य! यह जो तुझको कहा इस सर्वसे पर जो जगत्

एषहि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः । स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते ॥ ९ । ५० ॥

का कर्त्ता आत्मस्वरूप है सो सूर्य के अर्थात् जलादिगत सूर्य के प्रतिबिम्ब आदिकोंवत् भोक्तापने और कर्त्तापने करके इस विषे प्रवेश को पाया है एतदर्थ 'एषहि द्रष्टा स्प्रष्टा श्रोता घ्राता रसयिता मन्ता बोद्धा कर्त्ता विज्ञानात्मा पुरुषः' < यह ही देखनेवाला स्पर्श करनेवाला सुननेवाला स्वादका लेनेवाला मनन करनेवाला जाननेवाला करनेवाला और विज्ञानात्मा पुरुषहै > अर्थात् जिसकरके जानते हैं ऐसा जो करणरूप बुद्धिआदिक विज्ञानहै सो यह नहीं, किन्तु यह तो जो जानताहै ऐसा कर्त्ता और कारकरूप विज्ञानहै तिस विज्ञानरूप स्वभाववालाहै अर्थात् विज्ञाता स्वभाववाला है एतदर्थ विज्ञानात्मा कहते हैं । और तिसहीको कार्य और करणके संघातरूप उक्त उपाधियों विषे पूर्ण होनेसे पुरुष कहते हैं 'स परेऽक्षरे आत्मनि सम्प्रतिष्ठते' < सो अक्षररूप परमात्माविषे लीन होता है सो पुरुष जैसे जलादि आधारके शोषण हुये सूर्यादिकोंके प्रतिबिम्ब सूर्यादिकों विषे प्रवेश को पावते हैं तैसेही अक्षररूप परमात्माविषे लीन होताहै ॥९।५०॥

१० ॥ हे सौम्य! अब तिस जीवात्मा और परमात्माकी अभेदताके जाननेवाले को जो ब्रह्मप्राप्तिरूप फल होता है सो कहते हैं 'यस्तु सौम्य' < हे सौम्य! जो > ऽ 'स यो ह वै' < कोई कहीं सर्व ईषणा से रहित हुआ > ऽ 'तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते' < तिस अछाय अशरीर अलोहित शुद्ध अक्षर को जानता है > अर्थात् ऽ तिस अज्ञानरहित और शरीररहित और लोहितादि गुणरहित ऽ [अर्थात् अज्ञानादि तीन विशेषण से रहित कहने से कारण और सूक्ष्म और स्थूल इनतीनों शरीरोंका निषेधहै तिसकरके अवस्था तीनोंका भी निषेध होता है, तिस

परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स यो ह वै तदच्छायमशरीरमलोहितं शुभ्रमक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य स सर्व्वज्ञः सर्वो भवति तदेष श्लोकः ॥ १०।५१ ॥

निषेध से आत्मा का जो तीनों अवस्था से रहितपना है तिसका अनुवाद करते हैं] और नामरूपादि सर्व उपाधि के शरीर से रहित, और रक्तादि द्रव्यवत् रक्तादि सर्वगुण रहितहै। हे सौम्य! जिस करके ऐसा है इसहीसे शुद्ध है और सर्व विशेषणों से रहित है ताते अक्षर ऽ सत्य पुरुष नामवाला प्राणरहित मनका अविषय शिव रूप शान्त बाहर भीतर की कल्पना से रहित अजन्मा, ऽ को जानता है ऽ 'परमेवाक्षरं प्रतिपद्यते स' < सो परम अक्षर कोही प्राप्त होताहै > ऽ सो पुरुष परब्रह्मरूप अक्षरकोही पावता है 'ब्रह्मविद्ब्रह्मैव भवति' और जो सर्वका त्यागी हुआ जानता है ऽ 'स सर्व्वज्ञः सर्वो भवति तदेष श्लोकः' < सो सर्व्वज्ञ है सर्व होता है तिस बिषे यह श्लोक (प्रमाण) है > ऽ सो ज्ञानवान् सर्वज्ञ होता है। अर्थात् तिस अक्षर के जाननेवाले से अज्ञात कुछ भी संभवता नहीं ॥ शंका ॥ सर्व्वात्मभाव को ज्ञान करके जन्यता के होने से तिस सर्व्वात्मभाव का अनित्यपना होता है ॥ समाधान ॥ पूर्व अविद्या करके असर्वज्ञ था पश्चात् आचार्य के उपदेश से विद्या करके अविद्या के अभाव भये सर्व रूप होता है उपजता नहीं, और तिसही अर्थ विषे यह अग्रिम (आगे) कहने का वाक्यरूप श्लोक (वेद का मंत्र) प्रमाण है ॥१०।५१॥

११ ॥ हे सौम्य! पिप्पलादमुनि कहते हैं कि 'सौम्य' < हे प्रियदर्शन! हे गार्ग्य! > 'सहदेवैश्च सर्व्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र' < सर्व देवताओं करके (सहित) इन्द्रिय (और) भूत जिस विषे प्रवेश को पावतेहैं > अर्थात् समस्त अपने अधिष्ठाता देवताओं करके सहित चक्षुरादि इन्द्रिय और पृथिव्यादि भूत जिस अक्षर बिषे प्रवेश को पावतेहैं ऽ 'तदक्षरं यस्तु' < तिस अक्षरको जो >ऽ

विज्ञानात्मा सहदेवैश्च सर्व्वैः प्राणा भूतानि सम्प्रतिष्ठन्ति यत्र । तदक्षरं वेदयते यस्तु सौम्य स सर्व्वज्ञः सर्व्वमेवाविवेशेति ॥ ११ । ५२ ॥

इति श्रीप्रश्नोपनिषदि चतुर्थप्रश्नः समाप्तः ।

अथ प्रश्नोपनिषद्गतः पंचमप्रश्नः ॥

अथहैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ । सयोह वै तद्भगवन्मनुष्येषु प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत कतमं वा वसतेन लोकं जयतीति ॥ १ । ५३ ॥

'विज्ञानात्मा' < जीव > अर्थात् < तिस सर्व्व के आश्रयरूप अक्षर को जो उक्त अर्थ का जिज्ञासु (ग्राहक) जीवात्मा 'वेदयते' < जानता है > 'स सर्वज्ञः सर्वमेवाविवेशेति' < सो सर्वज्ञ हुआ सर्व के ताईं ही प्रवेश को पावता है > अर्थात् सर्वज्ञ सर्वात्माही होता है ॥ ११ । ५२ ॥

प्रश्नोपनिषद्के चतुर्थप्रश्नकी भाषाटीका समाप्त हुई ।

प्रश्नोपनिषद्गत पंचमप्रश्न की भाषाटीका का प्रारम्भ ।

१ ॥ हे सौम्य ! हे प्रियदर्शन ! [इसप्रकार चतुर्थ प्रश्नबिषे कहे प्रमाण उत्तमाधिकारी को पदार्थ के शोधन पूर्वक वाक्यार्थ के ज्ञानसे अक्षर ब्रह्मकी प्राप्तिकहके अब इसबिषे मध्यमाधिकारी मन्द वैराग्यवाले और " ॐ " ऐसे आत्मा को ध्यान करनेवाले ऽ 'प्रणवो धनुः' < ॐकार धनुष है > ऽ इत्यादि मुंडक उपनिषद् के मंत्र से सूचित किया जो ब्रह्मलोक की प्राप्ति तिस द्वारा क्रम

करके अक्षर ब्रह्मकी प्राप्तिके अर्थ ॐकारकी उपासना कहनेको पंचम प्रश्नको प्रकट करते हैं] अब गार्ग्यमुनिके प्रश्नके निर्णय भये पश्चात् परब्रह्म और अपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होने करके ॐकारकी उपासनाके करने की इच्छा से पंचम प्रश्न का प्रारम्भ करते हैं ' अथ हैनं शैब्यः सत्यकामः पप्रच्छ ' < तिसके पश्चात् इसको शिबिका पुत्र सत्यकाम पूछताभया > अर्थात् गार्ग्यमुनिके पश्चात् इस निर्णयकर्त्ता पिप्पलादमुनि को शिबि ऋषिका पुत्र सत्यकामनामा मुनि पूछताभया ॥ सत्यकाम उवाच ॥ 'सयोह वै तद्भगवन्मनुष्येषु ' < हे भगवन् ! मनुष्योंके मध्य सो अद्भुतवत् है सो जो (कोई एकमनुष्य) > ' प्रायणान्तमोंकारमभिध्यायीत ' < मरणपर्यन्त ॐकार को सन्मुख ध्यान करे > अर्थात् जो कोई एक मनुष्य शरीर के पात होने पर्यन्त इस ॐकार को सन्मुख होने करके चिन्तन करे। अर्थात् जो बाह्यके विषयों से निवृत्त किये इन्द्रियोंवाला और भक्तिकरके आरोपित किया है ब्रह्मभाव जिस बिषे ऐसे ॐकार बिषे एकाग्रचित्तवाला और उच्छेद (विनाश) रहित आत्माकार वृत्तिवाला और अनात्माकार वृत्तिरूप अन्तराय (व्यविधान) से रहित हुआ , जैसे वायुकरके रहित स्थानविषे स्थित जो दीपक तिस दीपक की शिखा के समान निश्चल चित्तवाला होय, और सत्य भाषण ब्रह्मचर्य अहिंसा अपरिग्रह (दान न लेना) त्याग (दान देना) संन्यास (संग्रहका त्याग) शौच (पवित्रता) संतोष निष्कपट भाव इत्यादि अनेक यम नियम से अनुग्रह को पाया होय, सो पुरुष आश्चर्यवत् है < ' कतमं वाव स तेन लोकं जयतीति ' < सो तिससे कौनसे लोकको पावता है >> हे भगवन् ! सो इस प्रकार यावत्पर्यन्त जीवत रहै तावत्पर्यन्त नियम की धारणावाला पुरुष उपासना और कर्म्मों करके जो पावनेयोग्य अनेक लोकहैं तिनमें से तिस ॐकारके अभिध्यान करने से कौनसे लोकको पावताहै ॥ १ । ५२ ॥

तस्मै सहोवाच एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोङ्कारस्तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैकतरमन्वेति ॥ २।५४ ॥

२ ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार जब सत्यकाम मुनिने प्रश्न किया तब < 'तस्मै सहोवाच' < तिसको सो कहताभया > > तिस प्रश्नकरनेवाले सत्यकाम नामक अपने शिष्यप्रति सो पिप्पलाद मुनिनामा आचार्य स्पष्ट कहताभया [इस उपासनाको ॐकार के अभिध्यानरूप होनेसे दहराकाशादिकोंकी उपासनावत् अपर ब्रह्मकी प्राप्तिका साधनही है, अथवा परब्रह्मकी प्राप्तिका भी साधनहै । इसप्रकारसे प्रश्नकरनेवाले शिष्यके अभिप्रायके जाननेवाले सर्व्वज्ञ पिप्पलादमुनि कहतेभये कि यह ॐकार अपरब्रह्मके आलम्बन होनेसे जब तैसा ध्यान करिये तब अपरब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होताहै और परब्रह्मके आलम्बन होनेसे जब ॐकारका तैसा ध्यान करिये तब सो क्रमसे परब्रह्मकी प्राप्तिका साधन होताहै । 'एतदालम्बनं श्रेष्ठमेतदालम्बनं परम् । एतदालम्बनं ज्ञात्वा ब्रह्मलोके महीयते' ऐसा उत्तर कहते हैं, ॥ पिप्पलादउवाच ॥ 'एतद्वै सत्यकाम परञ्चापरञ्च ब्रह्म यदोंकारः' < हे सत्यकाम ! यह जो परब्रह्म और अपरब्रह्महै सो ॐकारहीहै > अर्थात् हे सत्यकाम ! यह जो सत्य अक्षर पुरुष इत्यादि नामोंकरके परब्रह्महै और सर्व से प्रथम उत्पन्नभया प्राण (सूत्रात्मा) नामकरके अपरब्रह्महै सो उभयप्रकार का ॐकारही है । क्योंकि ॐकाररूप प्रतीकवालाहै ताते ॥ शंका ॥ ब्रह्म और ॐकारके भेदसे तिनकी एकता कैसे बने ॥ समाधान ॥ तिनकी एकता आरोपसे बनती है । यहां यह भावहै कि इस ब्रह्म और ॐकारके एकअर्थ विषे तात्पर्यरूप सामानाधिकरणसे ॐकारका प्रतीकपना उपदेशकरते हैं । जैसे शालग्रामादि पाषाणविषे विष्णु आदिक बुद्धि करनी तैसे, । जिस और विषे औरकी बुद्धि करिये सो तिसका प्रतीक कहते हैं । यहां ब्रह्मसे इतर जो वर्णात्मक

स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्ण-मेव जगत्यामभिसम्पद्यते । तमृचो मनुष्यलोकमुपनय-न्ते स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमान-मनुभवति ॥ ३ । ५५ ॥

ॐकार तिसविषे ब्रह्म की बुद्धि करते हैं एतदर्थ ॐकार ब्रह्मका प्रतीक है । जैसे विष्णु आदिकों के शालग्रामादि,] और जिस करके सर्व धर्म के भेद से रहित परमात्मा शब्द आदि प्रमाणों करके साक्षात् बोधकरने के अयोग्यहै, एतदर्थ इन्द्रियोंके अगो-चर होने से केवल करण रहित मन से भी जाननेको शक्य नहीं, किन्तु , जैसे शालग्रामादिविषे आरोपित करतेहैं विष्णुभाव तैसे, भक्ति करके आरोप किये ब्रह्म भाववाले ॐकार के सम्यक् ध्यान करनेवाले पुरुष को सो जानने में आवता है, इसविषे शास्त्र का प्रमाण है ताते । और इसही प्रकार अपरब्रह्म भी जानने में आ-वता है । एतदर्थ जो पर और अपररूप ब्रह्म है सो ॐकार है । इसप्रकार का आरोप करते हैं ८ ' तस्माद्विद्वानेतेनैवायतनेनैक-तरमन्वेति ' ८ ताते ऐसे जाननेवाला इस ध्यानसेही दोनों में से एक को पावता है, ७ एतदर्थ इसप्रकार जाननेवाला विद्वान् पुरुष इस ॐकार के ध्यानरूप, आत्मा की प्राप्ति के साधनरूप साधन के आश्रय से ही परब्रह्म और अपरब्रह्म इन दोनों में से एक को पावता है कि जिसकी प्राप्ति की इच्छा से करता है ॥ २ । ५४ ॥

३ ॥ हे सौम्य ! जो पुरुष, ब्रह्म का समीपवर्ती श्रेष्ठ आलम्बन अर्थात् उपकार साधक और अकार आदिक तीनमात्रावाला जो ॐकार सो उपासना करने के योग्य है इसप्रकार यद्यपि ॐकार की अकारादि सर्वमात्रा के विभाग का यथार्थ जाननेवाला न होय, किन्तु ॐकार की एक अकारमात्रा उपासना करने योग्य है इसप्रकार जानता है । तथापि सो दुर्गति को प्राप्त होता नहीं, किन्तु एक मात्रारूप ही ॐकार के ध्यान के प्रभाव से इस

लोक विषे श्रेष्ठगति को ही पावता है । यह इस तृतीयवाक्य का तात्पर्य्य है, अब इसके अक्षरार्थ को श्रवणकरो हे सौम्य ! 'स यद्येकमात्रमभिध्यायीत स तेनैव संवेदितस्तूर्णमेव जगत्यामभिसम्पद्यते' < सो जब एकमात्रारूपको ध्यान करता है सो तिस से ही भली प्रकार जानता हुआ शीघ्रही जगत् विषे पावता है> अर्थात् इस प्रकार सो जब एक मात्रा के ही विभाग का जाननेवाला सर्वदा एक मात्रारूप ओंकार को ध्यान करता है सो पुरुष एक मात्रापने करके युक्त ओंकार के ध्यान से ही तिस मात्रा के सम्यक् प्रकार बोधवान् हुआ शीघ्रही जगत् (पृथिवी) विषे जन्म पावता है । और < 'तमृचो मनुष्यलोकमुपनयन्ते' < तिसको मनुष्य शरीर को ऋग्वेद प्राप्त करेहैं >> तहां पृथिवी विषे अनेक जन्म हैं तिन विषे तिस ॐकारके साधकको मनुष्यलोक (शरीर) के अर्थही ऋग्वेदरूप 'स ऋग्वेद इतिश्रुतेः' < अकार ऋग्वेद है >। इस श्रुति से अकाररूप ॐकारकी प्रथम मात्राको ऋग्वेद रूपता है ओंकारकी प्रथम एकमात्रा जो है सो प्राप्त करेहै । और < 'स तत्र तपसा ब्रह्मचर्येण श्रद्धया सम्पन्नो महिमानमनुभवति' < सो तिसविषे तप से ब्रह्मचर्य से श्रद्धा से सम्पन्न हुआ महिमा को अनुभव करता है>> सो साधक तिस प्रथम मात्रारूप ॐकार के ध्यानसे तिस मनुष्य जन्मविषे द्विजोत्तम हुआ और तपकरके ब्रह्मचर्य करके और श्रद्धा करके सम्पन्न हुआ महिमा (विभूति) को अर्थात् धन पुत्र क्षेत्र दासादि वैभव को अनुभव करता है । परन्तु श्रद्धा रहित हुआ यथेष्ट आचरण को करता नहीं 'एक देशके ज्ञान से रहित जो योगभ्रष्ट है सो कदाचित् भी दुर्गतिको पावता नहीं' ऐसा गीताका प्रमाण है । तातें ॐकार की एक मात्राके ध्यान करने वाले को कहे हुये फलका असम्भव नहीं । इति सिद्धम् ॥ ३।५।५॥

४ ॥ हे सौम्य! 'अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते' < पुनः जब दो मात्रा करके युक्त मन विषे पावता है > अर्थात् पुनः एक मात्रारूप ॐकार के उपासक से इतर जब दोमात्रा के विभागका

अथ यदि द्विमात्रेण मनसि सम्पद्यते सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते। स सोमलोकं स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते॥ ४। ५६॥

ज्ञाता जो पुरुष दोमात्रारूपसे युक्त ॐकारको ध्यान करता है, सो स्वप्नरूप मननकरने योग्य यजुर्वेदमय चन्द्ररूप दैवतवाले मन विषे भलीप्रकार एकाग्रतासे आत्मभावको प्राप्तहोता है ('सोऽन्तरिक्षं यजुर्भिरुन्नीयते। स सोमलोकं' < सो यजुर्वेद से अन्तरिक्षलोकवाले चन्द्रलोकको प्राप्त होताहै >) सो इसप्रकार आत्मभावको प्राप्त सरखारहित हुआ द्वितीयमात्रारूप यजुर्वेद से अन्तरिक्षरूप आधारवाले द्वितीयलोकरूप चन्द्रलोकके अर्थ प्राप्त होता है। अर्थात् तिस द्वितीयमात्राके उपासक साधकको यजुर्वेद जो है सो चन्द्रलोक सम्बन्धी जन्मको देता है ('स सोमलोके विभूतिमनुभूय पुनरावर्त्तते' < सो चन्द्रलोक विषे विभूतिको अनुभव करके फेर आवता है >) सो उपासक तिस चन्द्रलोकविषे उत्तम पदार्थोंको भोगके पुनः इस मनुष्यलोक विषे (ब्राह्मणादि उत्तमकुल में) जन्म पावता है॥ ४। ५६॥

५॥ हे सौम्य! 'यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत' < जो पुनः तीनमात्रावाले ॐ इसही अक्षर से इस परम पुरुषको ध्यान करता है > अर्थात् जो पुरुष पुनः तीनमात्रा के विषय करनेवाले ज्ञानयुक्त ॐ इस प्रकारके इसही अक्षररूप प्रतीक से इस ॐकाररूप सूर्य्य के अन्तरगत परं पुरुष को ध्यान करता है ('स तेजसि सूर्य्ये सम्पन्नः' < सो तेजरूप सूर्य्य विषे प्राप्त होता है >) सो तीसरी मात्रारूप ध्यान करता हुआ; मराहुआ भी तिस ध्यानमात्रसे तेज रूप सूर्य्य विषे प्राप्त होताहै। और सो सूर्य्यसे चन्द्रलोकादिकों विषे गये हुये जैसे फेर आवते हैं तैसे, पुनरावृत्तिको पावता नहीं किन्तु सूर्य्यविषे प्राप्तहुआही होताहै। और ('यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत एवं हवै स

यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणौवोमित्येतेनैवाक्षरेण परं पुरुषमभिध्यायीत स तेजसि सूर्ये सम्पन्नः यथा पादोदरस्त्वचा विनिर्मुच्यत। एवं ह वै स पाप्मना विनिर्मुक्तः स सामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं सएतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते तदेतौ श्लोकौ भवतः ॥ ५।५७॥

पाप्मना विनिर्मुक्तः' < जैसे सर्प त्वचा से छूटजाता है ऐसे प्रसिद्ध ही सो पापसे मुक्त होता है > ? जिसप्रकार सर्प अपनी त्वचासे मुक्त होता है, पश्चात् जीर्णत्वचासे छूटाहुआ सो सर्प पुनः नवीन होताहै। हे सौम्य! जैसे यह दृष्टान्त है। तैसे ही प्रसिद्ध सो तीन मात्राका ध्यान करनेवाला साधक सर्पकी त्वचास्थानापन्न अपने अशुद्ध्यादिरूप पापसे मुक्त होता है । और < 'ससामभिरुन्नीयते ब्रह्मलोकं' < सो सामसे ऊंचे ब्रह्मलोकको पावताहै > ? जब अशुद्धतारूप पापसे मुक्त होता है तब पीछे सो साधक तृतीयमात्रारूप सामवेदकरके ऊंचे हिरण्यगर्भरूप ब्रह्मके सत्य नामवाले लोक (सत्यलोक) को प्राप्त होता है < सो हिरण्यगर्भ सर्व संसारी जीवोंका आत्मरूप है और जिसकरके सो हिरण्यगर्भ समष्टि लिंगदेहरूपकरके सर्वभूतों का अन्तरात्मा है तिस करके समष्टिलिंगशरीररूप हिरण्यगर्भविषे व्यष्टिलिंग देहोंके अभिमानी सर्वजीव मिलेहुये हैं। एतदर्थ सो हिरण्यगर्भ जीवघन रूपहै > वाक्य योजना 'स एतस्माज्जीवघनात्परात्परं पुरिशयं पुरुषमीक्षते' < सो इसपर जीवघनसे पर पुरियोंविषे स्थित पुरुषको देखता है > सो विद्वान् तीसरी मात्रा को ध्यान करता हुआ इस सर्वसे उत्कृष्ट जीवघनरूप हिरण्यगर्भ से पर परमात्मा नामवाले सर्वशरीररूप पुरियों विषे स्थितपुरुषको देखता है [यहां इस रीतिसे अन्वय है। सो विद्वान् साधक अभी इस अपनी जीवनदशा विषे ध्यान करता हुआ शरीरावसान के पश्चात् ब्रह्म लोक को प्राप्त होता है। तहां ब्रह्मलोकविषे स्थावर जंगमरूप

तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः । क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पतेज्ञः ॥ ६ । ५८ ॥

प्राणियों से पर जो जीवघननामक हिरण्यगर्भ तिससे पर जो परमात्मापुरुष तिसको अपना आप देखता है] 'तदेतौ श्लोकौ भवतः' ‹ तहां यह दो मंत्र हैं › तहां यह उक्त अर्थ के प्रकाश करनेवाले दो मंत्र प्रमाण होते हैं ॥ ५ । ५७ ॥

६ ॥ हे सौम्य ! 'यः पुनरेतत्त्रिमात्रेणैवोमित्ये' इत्यादि इस ब्राह्मवाक्यके साथ प्रथम (पहिले) मन्त्र की योजना करते हैं 'तिस्रो मात्रा मृत्युमत्यः प्रयुक्ता अन्योन्यसक्ता अनविप्रयुक्ताः' ‹ तीन मात्रा मृत्युगोचर परस्पर सम्बन्धवाली हैं › अर्थात् तीन हैं संख्या जिनकी ऐसी जो अकार उकार मकार नामवाली ॐकारकी तीनमात्रा हैं सो मृत्युकरके आक्रान्त (व्याप्त) अर्थात् मृत्युका विषयही हैं । और परस्पर सम्बन्धवाली हैं । सो तीन मात्रा विशेष करके एकएक विषय विषेही योजना न किया हो ऐसा नहीं, किन्तु विशेषकरके एकही ध्यानकालविषे त्यागकरी भई, जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिरूप स्थानके अभिमानी जे वैश्वानरादिकनसों अभिन्न विश्वादिक पुरुषों के अर्थात् [वैश्वानरसे अभिन्न विश्व जाग्रत्का अभिमानी तिसका स्थूलशरीररूप स्थान । और हिरण्यगर्भ से अभिन्न तैजस स्वप्नका अभिमानी लिंग शरीररूप स्थान । और अव्यक्तसे अभिन्न प्राज्ञ सुषुप्तिका अभिमानी कारण शरीररूप स्थान] अकार उकार मकाररूप मात्रा से, तादात्म्य (एकरूपता) करके ध्यानरूप जो ‹ 'क्रियासु बाह्याभ्यन्तरमध्यमासु सम्यक् प्रयुक्तासु न कम्पतेज्ञः' ‹ बाहर भीतर और मध्यकी क्रियाके भली प्रकार योजना किये हुये ज्ञाता कम्पमान होते नहीं › बाहर भीतर और मध्यकी क्रिया है तिनके सम्यक् प्रकार ध्यानके कालविषे योजना कियेहुये जब

ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं ससामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते । तमोङ्कारेणैवायतनेनान्वेति विद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयं परञ्चेति ॥ ७ । ५९ ॥

इति प्रश्नोपनिषदि पंचमप्रश्नः ॥ ५ ॥

तिसके साथ अकारादि तीनों मात्रा योजना किया होय तब ॐकारके कहे हुये विभागका जाननेवाला जो योगी है सो चलायमान अर्थात् विक्षेपको प्राप्त होता नहीं, किन्तु स्वरूप में स्थिरही रहता है । अर्थात् (जो चलायमान होताहै सो जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति विषे होता है सो सर्व ॐकारही है ऐसा जानलिया तब चित्त चंचलता छोड़ स्वरूपमें निश्चल होताहै) जिस करके उस साधक पुरुषने स्थूलादि स्थान सहित जाग्रत् स्वप्न और सुषुप्ति और विश्वादि जो तिनके अभिमानी पुरुषहैं, सो अकारादि तीन मात्रामय ॐकाररूपकरके देखे हैं, एतदर्थ इसप्रकार जाननेवाले योगीका चलायमान होना सम्भवे नहीं ॥ ६ । ५८ ॥

७ ॥ हे सौम्य ! जिस करके सो ऐसा पूर्वोक्त विद्वान् सर्वका आत्मा ॐकारमयहै तिसहेतुसे किसकारणकरके उसका चलायमान होना होय, किन्तु अपनेसे पृथक्वस्तु के अभावसे किसीकरके भी चलना (विक्षेप) बने नहीं । अथवा अपने से अपृथक् निश्चयभये जगत् बिषे किस विषयके अर्थ विक्षेपवान्होगा, किंतु किसीबिषे भी नहीं । इस अर्थके बोधक प्रथम मंत्र कहके अब सर्व अर्थके संग्रहरूप अर्थवाला द्वितीय मन्त्र कहते हैं ॥ हे सौम्य ! 'ऋग्भिरेतं यजुर्भिरन्तरिक्षं स सामभिर्यत्तत्कवयो वेदयन्ते' (सो ऋग्वेदसे इसको यजुर्वेदसे अन्तरिक्षको (और) जिसको विद्वान् जानते हैं (ऐसे ब्रह्मलोकको) सामवेदसे (पावता है)) अर्थात् सो विद्वान् (जो एकमात्रारूप) ॐकारका उपासक है ऋग्वेदसे इस मनुष्यलोक को पावताहै । और (जो दो मात्रा

वा दूसरी मात्रा रूप ॐकार का उपासक है सो) यजुर्वेद करके अन्तरिक्षगत चन्द्रलोक को पावता है। और जिसको विद्वान् पुरुष जानते हैं और अविद्वान् नहीं जानते ऐसा जो सत्यनाम वाला ब्रह्मलोक है तिसको (तीन मात्रा का वा तीसरी मात्रा का उपासक) सामवेद करके प्राप्त होता है। इसप्रकार विद्वान् उपासक अपरब्रह्मरूप तीन प्रकार के लोक को (समात्रिक) ॐकाररूप आलम्बन (साधन) से पावता है। और ऽ 'तमोंकारेणैवातनेनान्वेतिविद्वान् यत्तच्छान्तमजरममृतमभयंपरञ्चेति' ' जो शान्त अजर अमर अभय है तिसपर (ब्रह्म) को ॐकार रूप ध्यान से ही पावता है ' ऽ अर्थात् जो अक्षर सत्य पुरुष संज्ञक शान्त विमुक्त और जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति आदि भेद रूप सर्व प्रपंच से रहित है। और (जब अवस्था त्रयरूप सर्व प्रपंच से रहित है) इसही करके जरा और मृत्यु करके रहित है। और जिस करके जरा आदि विकारों से रहित है, इसही से अभय है। और जब अभय है तबही सर्व से अधिक है, ऐसा जो (त्रिमात्रिक ॐकार का लक्ष्यरूप) परब्रह्म है तिसको भी (प्रतिमावत्प्रतीक रूप त्रिमात्रिक) ॐकार की (उपासना रूप) आलम्बन (साधन) से ही प्राप्त होता है। 'इति' यहां जो ,इति, शब्द है सो वाणी की परिसमाप्त्यर्थ है इति सिद्धम् ॥ ७ ।५६ ॥

प्रश्नोपनिषद्गत पञ्चम प्रश्न की
भाषाटीका समाप्त हुई।

अथ प्रश्नोपनिषद्गतःषष्ठप्रश्नः ॥

अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्यो राजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत । षोडशकलं भारद्वाजपुरुषं वेत्थ तमहं कुमारमब्रुवं नाहमिमं वेद यद्यहमिममवेदिषं कथंते नावक्ष्यमिति समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति तस्मान्नार्हाम्यनृतं वक्तुं सतूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज तं त्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति ॥ १ । ६० ॥

प्रश्नोपनिषद्केषष्ठप्रश्नकीभाषा टीका का प्रारम्भ ।

१ ॥ हे सौम्य ! ‘सुषुप्ति कालविषे विज्ञानरूप जीवात्मा सहित सर्व कार्य्य कारणात्मक जगत् अक्षररूप परब्रह्मविषे लय होताहै’ इसप्रकार पूर्व चतुर्थ प्रश्नविषे कहिआये हैं । तिस कथनरूप प्रमाण की सामर्थ्य से प्रलय विषे भी तिसही अक्षर विषे यह सर्व जगत् लय होता है । और जिसकरके कार्य्यका अकारणविषे लय संभवता नहीं अर्थात् जो जिसका कार्य्यहै सो परिणाम में उसही अपने कारण में लय होता है अन्य में नहीं और ‘आत्मनः एष प्राणो जायते’ यह इसही उपनिषद्के तृतीय प्रश्नके तीसरी श्रुति से कहाहै । एतदर्थ जिस ब्रह्मविषे यह जगत् लय होता है तिसही ब्रह्म से जगत् का उपजना सिद्ध होता है ॥ और जगत् का जो मूल (कारण) है तिसके सम्यक् ज्ञानसे परममुक्ति होतीहै । अर्थात् [यद्यपि अद्वैत आत्मा के सम्यक् ज्ञानहुये ही मुक्ति होती है, कारण के ज्ञानसे नहीं, तथापि तिस आत्मा को कारणत्व होने से तिससे भिन्नकार्य्य का अभाव है, क्योंकि कारण से भिन्न कार्य्य की सत्ता होती नहीं, ताते आत्मा के अद्वैतपने का ज्ञान सिद्ध

होताहै, एदतर्थ तिस जगत्के मूल कारण आत्माके सम्यक् ज्ञान‹ चतुर्धा मुक्तिसे भिन्न › परममुक्ति होतीहै "आत्मा वा इदमेव एवाग्रआसीत्" "सएतमेव पुरुषंब्रह्म ततमपश्यत्" "प्रज्ञानंब्रह्म" "स एतेन प्रज्ञानेनात्मना अमृतःसमभवत्" "सदेव सौम्येदमग्र आसीत्" "आचार्यवान् पुरुषोवेद" "अथसमत्स्ये" तमेवैकंजान-थ" "अमृतस्यैषसेतुः" "अहंब्रह्मास्मीति" "तस्मात्तत्सर्वमभवत्" ‹यह जगत् प्रथम निश्चयकरके एकहीआत्माथा› ‹ सोइसही पुरुषको परिपूर्ण ब्रह्मरूप देखताभया ›। ‹ प्रज्ञान ब्रह्महै › । ‹ सो इस प्रज्ञानरूपसे अमरहोताभया ›। ‹हे सौम्य! यह आगे एकअद्वैत सत्हीथा› इसप्रकार आरम्भकरके। ‹ आचार्य्यवान्पुरुषजानता है› ‹ तिसही एकको जानो ›। ‹यहअमृतकासेतुहै›। ‹मैंब्रह्महौं›।‹तातेसो सर्वरूप होताभया› ॥ इत्यादि अनेक श्रुतियों के वाक्योंसे निश्चय कियाहै] यह सर्व उपनिषदों का निश्चितार्थ है । और इसही उपनिषद् के चतुर्थप्रश्नविषे "स सर्वज्ञः सर्वोभवतीति" ‹ सो सर्वज्ञ सर्वरूप होता है ›। इसप्रकार कहा है । ताते सो अक्षर ब्रह्मरूप सत्पुरुष नामवाला जो ‹ मुमुक्षुओं करके › जानने योग्य वस्तु है सो कहाहै। इसप्रकार पूछनेयोग्यहै। और तिसस-त्पुरुषको शरीरके भीतर स्थितकहाहै तिसकरके, प्रत्यगात्मा के सम्यक्ज्ञानार्थ इस षष्ठप्रश्नका आरम्भकरते हैं। और यहां सुकेशा नामवाले शिष्यने पूर्व व्यतीतभये अर्थका पुनः प्रश्नरूप कथन किया है, सो ज्ञानकी दुर्लभताकी प्रसिद्धिहोनेसे तिसकीप्राप्त्यर्थ पुरुषार्थ विशेषके उत्पादनार्थ है॥ अब ‹ [" गताः कलाःपंच-दशप्रतिष्ठा देवाश्च सर्वे प्रतिदेवतासु । कर्माणि विज्ञानमयश्च आत्मा परेऽव्यये सर्वएकीभवन्ति " ‹ पंचदश कला अपने कारण भावको प्राप्तभई कर्म औरविज्ञानमय (जीवात्मा) सोपरअव्यय (अविनाशी) अक्षर ब्रह्म विषे एक (अभेद) होतेहैं› इसप्रकार मुंडक उपनिषद्केतृतीय मुंडकके दूसरे खंडके सातवें मन्त्रसे कहिके ऽ "यथानद्यःस्यन्दमानाःसमुद्रेस्तंगच्छन्ति नामरूपे विहाय

तथाविद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम् " अब ऽ <जैसे नदियां सर्वओर से बहतीहुईं अपने कारण समुद्रविषे जाय अपने नामरूपको छोड़ (समुद्रही होती हैं)। तैसे प्रत्यगात्मा को सम्यक् अनुभव करनेवाला विद्वान् (बुद्धिविशिष्ट चैतन्य)परात्पर परम दिव्य अक्षर पुरुषको प्राप्तहोता है > इस मुंडककेही उक्त खंडके आठवें मन्त्र करके दृष्टान्तके कथनप्रमाणसे परब्रह्म की प्राप्ति कही है । ताते इन उक्त दोनों मन्त्रोंका अर्थ सविस्तर कहनेके अर्थ इसषष्ठ प्रश्नका आरम्भ करते हैं] >॥ हे सौम्य! सत्यकामामुनिके प्रश्नके निर्धारहोनेके ऽ 'अथ हैनं सुकेशा भारद्वाजः पप्रच्छ ' < पश्चात् इसको भारद्वाजका पुत्र सुकेशा प्रश्नकरता भया > ऽ अर्थात् सत्यकामाके प्रश्नके अनन्तर इस पिप्पलाद मुनिरूप आचार्यसे भारद्वाजमुनिका पुत्र सुकेशानामवाला मुनि प्रश्नकरताभया ॥ सुकेशा उवाच ॥ ऽ 'भगवन् हिरण्यनाभः कौसल्योराजपुत्रो मामुपेत्यैतं प्रश्नमपृच्छत ' < हे पूजाके योग्य! कौसलदेशका हिरण्यनाभ राजपुत्र मेरे समीपआय इसप्रश्नको पूछताभया > ऽ हे सर्व संशयके नाशकर्ता! हे भगवन् ! एकसमय, कौसलदेशमें उत्पन्नभया ऐसा जो हिरण्यनाभ नामवाला क्षत्रियजातीय प्रख्यात राजपुत्र मेरे समीपआय इसकथनकरनेके प्रश्न को पूछताभया कि ऽ 'षोडशकलं भारद्वाजपुरुषं वेत्थ ' < हे भारद्वाज! षोड़शकलावाले पुरुषको जानताहै > ऽ हे भारद्वाज! सोलह संज्ञाहैं जिनकी ऐसी जो कलाहैं सो, शरीरविषे अवयवोंवत्, जिस आत्मरूप चैतन्य पुरुषविषे अविद्या करके अध्यारोपमात्रहैं, एतदर्थ इस चैतन्य पुरुषको सोलहकलावाला कहते हैं तिससोलह कलावाले पुरुषको तू जानता है। हे भगवन्! इस प्रकार जब उसने प्रश्नकिया तब 'तमहं कुमारमब्रुवम् नाहमिमंवेद ' < तिस कुमारको इसको मैं जानता नहीं ऐसे कहताभया > अर्थात् ऽ तिसप्रश्नकर्त्ता राजकुमार को जिसके विज्ञानार्थ तेरा प्रश्न है तिस पुरुषको मैं जानता नहीं इसप्रकार मैं कहताभया । परन्तु

उक्तप्रकारका कहनेवाला जो मैं तिस मेरे वाक्य में भी यह भार-द्वाजमुनि कहता है कि मैं उस सोलहकलावाले पुरुष को नहीं जानता सो यह आप जानता होयके नहीं जानता कहता है वा न जानके, इसप्रकार, अज्ञानके संशयका सम्भव उस कुमारविषें विचार तिस राजपुत्रको मैं ,प्रश्नकिये पुरुषके विषयमें, अपने अज्ञानका कारण कहता भया कि हे राजकुमार! ऽ 'यद्यहमिमम-वेदिषं कथं तेनावक्ष्यमिति' < जब मैं इसको जानता होउँ तब तेरे अर्थ कैसे न कहूं > ऽ जब मैं तुझकरके प्रश्नकिये पुरुषको जानताहोउँ तो तुझसरीखे उत्तमगुणसम्पन्न शिष्यके अर्थ कैसे न कहूं, किन्तु कहताही। हे भगवन्! इसप्रकार कहके भी मैं अप-ने वाक्य में उसका अविश्वास जान विश्वास करावनें के अर्थ पुनः मैंने कहा कि हे राजकुमार! ऽ 'समूलो वा एष परिशुष्यति योऽनृतमभिवदति' < जो अनृत कहता है यह समूल सूखजाता है > ऽ जो पुरुष ज्ञानीहुआ भी अपनेआपके विषयमें 'मैं अज्ञानी हौं' इसप्रकारका आरोप करता हुआ अन्यथा भये अर्थरूप अन-र्थ (झूठ) को कहता है सो अपने धर्म कर्मरूप मूल सहित सूख जाता है अर्थात् इसलोक परलोक से भ्रष्टहोता है ऽ 'तस्मान्ना-र्हाम्यनृतंवक्तुं' < तातें अनृत कहने को योग्य नहीं > ऽ एतदर्थ इसप्रकार जब मैं जानताहौं तब मैं मूढ़ पुरुषोंवत् झूठ कहनेको योग्य नहीं हौं। हे भगवन्! इसप्रकार जब मैं कहा तब ऽ 'स तूष्णीं रथमारुह्य प्रवव्राज' < सो चुपहुआ रथमें बैठ जाताभया > ऽ मेरे कहे वाक्यमें विश्वासको प्राप्तहोय सो राजकुमार प्रश्न से उपरामहोय रथमें बैठ जहांसों आयाथा तहांको जाताभया तातें हे भगवन्! ऽ 'तंत्वा पृच्छामि क्वासौ पुरुष इति १' < तिसको तुम्हारेताईं पूछताहौं यहपुरुष कहां है > ऽ न्याय में शरणको प्राप्त भये अधिकारी शिष्यके अर्थ ज्ञाता गुरुकरके विद्याकहने को योग्य हीहै। और सर्व अवस्थाविषे झूठ कदापि कहने के योग्य नहीं। और जानने के योग्य होने से बाणवत मेरे हृदयविषे स्थित, ऽ अ-

तस्मै सहोवाच । इहैवान्तःशरीरे सौम्य सपुरुषो यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति ॥ २ । ६१ ॥

र्थात् [यावत् जाननेको इच्छितवस्तुको जानते नहीं तावत्पर्यन्त सो वस्तु हृदयबिषे बाणवत् भासे है] ऽ तिस पुरुषको मैं तुम्हारे प्राति पूछताहौं कि यह जो जानने योग्य पुरुष है, कि जिसके जाननेके अर्थ राजपुत्रका मुझसे प्रश्नथा, सो कहां वर्त्तताहै॥ १।६०॥

२॥ हे सौम्य! उक्त प्रकार जब सुकेशा मुनिने अपने वृत्तान्त कहने पूर्वक प्रश्नकिया तब ऽ 'तस्मै सहोवाच' < तिसके अर्थ सो कहते भये > ऽ तिस प्रश्नकर्ता सुकेशामुनिके अर्थ सो सर्वज्ञ पिप्पलाद मुनीश्वर कहतेभये ऽ 'सौम्य! यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्तीति' < हे सौम्य! जिसबिषे यह सोलह कला उपजती हैं > ऽ कि हे प्रियदर्शन! जिसपुरुषबिषे यह अग्रिम कहनेकी प्राणादि सोलह कला उत्पन्न होती हैं, एतदर्थ सोलह कला रूप उपाधियों से जो पुरुष निष्कल (कला रहित) है सो निष्कल हुआ भी अविद्या दोष करके कलावालेवत् देखते हैं, ऐसा जो ,शुद्धचैतन्य, पुरुष है ऽ 'स पुरुषो इहैवान्तःशरीरे' < सो पुरुष इसही शरीर के अन्तर है > ऽ सो पुरुष कि जिसके अर्थ तेरा प्रश्न है इसही शरीर बिषे < कि जिसविषे स्थित हुआ तू प्रश्न करता है > एकहृदय कमल है तद्गत जो < दहर नामवाला > अन्तराकाश है तिस आकाश के मध्य < मुमुक्षुओं करके > जानने योग्य है। अन्य देशबिषे कहीं भी नहीं ॥ २ । ६१ ॥

३॥ हे सौम्य! < ब्रह्मविद्या आदि जिसविद्या को कहते हैं तिस > विद्या से तिस , निष्कल , पुरुष की, अविद्या दोषसे आरोपित जेकला तिनके अध्यारोप के अपवाद के होने से सो पुरुष केवल अनुभव करनेके योग्यहै, एतदर्थ कलाओं की उत्पत्ति उस सों कही है। और अत्यन्त भेदरहित अद्वैतशुद्धतत्त्वबिषे अध्यारोप किये विना प्राणादि कलाका प्रतिपाद्य और प्रतिपादनादिक

सईक्षाञ्चक्रे। कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठिते प्रतिष्ठास्यामीति ॥ ३ । ६२ ॥

व्यवहार करने को समर्थ नहीं, एतदर्थ इन कलाओं के उत्पत्ति स्थिति और लय का अविद्या के आधीन आरोप करते हैं और जिस करके यह कला चैतन्य से अभेद करके ही उत्पन्न हुई स्थित हुई लय हुई सर्वदा देखते हैं। याही से कोई एक, क्षणिक विज्ञान वादी, मूर्ख भ्रमी पुरुष' अग्नि के संयोग से घृतवत् चैतन्य (विज्ञान) ही घटादि आकार से क्षण क्षण बिषे उपजे हैं, और नाश होता है, इस प्रकार मानते हैं और शून्यवादी जो पुरुष हैं तिनको सुषुप्ति आदि अवस्थाबिषे तिनरूपादि विषय के और ज्ञानरूप से चैतन्य के अभाव हुये सर्व शून्यही होता है, ऐसा भ्रम होता है। और दूसरे न्यायशास्त्र के ज्ञाता नैयायिक पुरुष जो हैं सो चेतना के करनेवाला नित्य आत्माका घटादिकों को विषय करनेवाला चैतन्य (ज्ञानगुण) अनित्य उपजता है और नाश होता है, इसप्रकार कहते हैं, और अन्यजे चारवाक मतके पुरुष हैं सो ऐसा कहते हैं कि चैतन्य जिसको कहते हैं सो देहाकार से मिले हुये जे पृथिव्यादि वायुपर्यन्त चारभूत हैं तिनका धर्म (संयोगी फल) है। हे सौम्य ! इन कहे हुये सर्व पुरुषों को प्राणादिकला और चैतन्य के अभेद की भ्रान्ति है परन्तु श्रुति का सिद्धान्त यह है जो जन्म मरण रूप धर्म से रहित चैतन्यरूप आत्माही नामरूपादि उपाधियों के धर्मों से नानाभाव करके और कार्यभाव करके प्रतीत होता है ॥ "सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म" ‹ सत्यज्ञान अनन्तरूप ब्रह्म है › और "प्रज्ञानमानन्दं ब्रह्म" ‹ प्रज्ञान आनन्दरूप ब्रह्म है › और "विज्ञानघन एव" ‹ विज्ञानघन ही है › इत्यादि श्रुतियों के प्रमाण से और तैसे हुये अर्थात् क्षणिक विज्ञानवादी आदिकों के कहे प्रमाण हुये, श्रुति के सिद्धान्त से विरोध आवता है एतदर्थ वोक्षणिक विज्ञानवादी

आदिकों के मत सर्वथा त्यागने ही योग्य हैं ॥ [अव ज्ञानकाल विषे विषयों का सद्भावही होय इस नियम का अभाव है ताते । और विषय कालविषे ज्ञान के सद्भाव का नियम है ताते, तिस ज्ञान और विषय का भेद है । इसप्रकार क्षणिक विज्ञानवादी के पक्ष को खंडन करते हुये, और अव्यभिचारता से ही ज्ञान की नित्यता को साधते हुये नैयायिक आदिकों के मतको खंडन करते हैं । यहां यह अर्थ है कि घटज्ञान के कालविषे पटके अभाव का संभव है तिस करके विषयों को ज्ञान से व्यभिचारित्वपना है । और ज्ञान को तो विषयकाल विषे अवश्य होने के नियम से अव्यभिचारित्वपना सिद्धही है ॥ और पट ज्ञान के काल विषे घट का ज्ञान भी नहीं है, ताते घट के ज्ञान को भी पटरूप विषय से व्यभिचारित्वपना है ॥ इस शङ्का को चित्त विषे न्याय के विषयों का स्वरूप से ही व्यभिचारित्वपना कहा है । और ज्ञान का विषय विशिष्टतारूप मात्रसेही व्यभिचार है स्वरूप से नहीं यह भेद है] ऽ स्वरूप से अव्यभिचारी पदार्थों विषे चैतन्य के अव्यभिचार होने से जैसे जैसे जो जो पदार्थ जानते हैं, तैसे तैसे जानने योग्य होने सेही तिस २ पदार्थ के चैतन्य का अव्यभिचारपनाही है ॥ शङ्का ॥ कोई एक वस्तु जानते नहीं परन्तु होती है । अर्थात् [उत्पन्न होय के शीघ्रही नाश होनहार आदिक वस्तु, और गिरिगुहान्तर्गतवस्तु को अज्ञात होने करके ज्ञान का भी ज्ञेयरूप विषय से व्यभिचार प्रसिद्ध है] ॥ समाधान ॥ हे सौम्य ! यह वादी का शङ्कारूप कथन कैसा है कि, जैसे कोई कहे कि रूपसंज्ञक विषयको देखते तो नहीं तथापि चक्षुहै, तद्वत्, अघटित है ऽ अर्थात् [वादी ने कहा कि कोइक वस्तु जानते नहीं परन्तु होती है, सो बने नहीं क्योंकि तिस वस्तु के अज्ञान के होने से तिसके अस्तित्वभाव की असिद्धि है, अर्थात् जिस वस्तुका ज्ञान नहीं और सो वस्तु है, ऐसा वस्तुका अस्तित्वभाव ज्ञान विना कदापि सिद्ध होता नहीं, ताते तैसा अज्ञातहुआ पदार्थ

असिद्धहीं है] ऽ एतदर्थ घट के ज्ञानकाल बिषे कदाचित् पट के अभाव से ज्ञेय (विषय) रूप पट ज्ञानसे व्यभिचारको पावताहै परन्तु ज्ञान जो है सो कदाचित् भी व्यभिचार को पावता नहीं क्योंकि एक ज्ञेय (विषय) के अभावहुये भी अन्यज्ञेय (विषय) विषे ज्ञानका स्वरूप करके सद्भावहै । और सुषुप्तिबिषे ज्ञानके न होनेसे ज्ञेय विषय कुछ होताहै, ऐसी प्रतीति किसी को भी होती नहीं, एतदर्थ भी ' ज्ञान ', व्यभिचारको पावता नहीं ॥ और जो कहै कि सुषुप्ति बिषे अदर्शनहोनेसे ज्ञानका भी अभावहै ताते ज्ञेय के व्यभिचारवत् ज्ञानके स्वरूपका भी व्यभिचारहै । सो ऽ [क्या तब सुषुप्तिबिषे तू ज्ञेयके अभावसे ज्ञानका अभाव साधता है वा ज्ञानके अदर्शन होनेसे ज्ञानका अभाव साधता है ? तिन दोनों पक्षों में, जब सुषुप्तिरूप ज्ञेयको अङ्गीकार किया तब ज्ञानके अदर्शनकी असिद्धिहै ; क्योंकि ज्ञानके अभावसे सुषुप्तिरूप ज्ञेय सिद्ध होता नहीं, ताते दूसरा पक्ष बनता नहीं यह आगे कहेंगे ? ऽ और जो तू प्रथम पक्षको कहेगा कि ज्ञेयके अभाव से ज्ञानका अभाव है, तो भी ज्ञेयको प्रकाश्यरूप होनेसे उसके अभावभये तिसके प्रकाशकरूप ज्ञानका अभावहै, इसप्रकार मानताहै, किंवा ज्ञान और ज्ञेय इन दोनों की एकता का अभावरूप ज्ञानका अभाव है, ऐसा मानताहै, तहां इनदोनों पक्षों में भी ज्ञान और ज्ञेयका परस्पर में व्यभिचारके होनेसे प्रथमपक्ष बने नहीं । और जो कहे कि प्रकाश्य के ज्ञानरूप एकही सामर्थ्यवाले प्रकाशका प्रकाश्य के अभावहुये अभाव कहते हैं, तहां प्रकाश को प्रत्यक्ष सिद्ध होनेसे सो भी बने नहीं, क्योंकि अन्धकार बिषे प्रकाश्यरूप की अप्रतीति के हुये तिसके ज्ञानबिषे समर्थ चक्षुरूप प्रकाश के अभाव की कल्पना करनीभी अशक्यहै ताते; प्रथमपक्ष बने नहीं । और सुषुप्तिबिषे जे ज्ञेयका अभाव सो अभावरूपही ज्ञेयहै तिस ज्ञेयके विद्यमान होते, ज्ञान और ज्ञेय इन दोनों के तादात्म्यमय एकता के अभावरूप ज्ञानका अभावहै यह दूसरापक्षभी बनता नहीं,

इस अभिप्रायसे सिद्धान्ती कहताहै]ऽ बने नहीं। क्योंकि ज्ञेयके प्रकाशक ज्ञानको, सूर्यादिकों के प्रकाशवत् ज्ञेयका प्रकाशकत्व है। और जैसे अपने करके प्रकाशने योग्य जे घटादि प्रकाश्य तिन के अभाव भये सूर्यादिकों के प्रकाश के अभावका असंभव है तद्वत्, सुषुप्तिविषे ज्ञानके अभावका असंभवहै। और जैसे अन्धकार बिषे चक्षुसे रूपविषयकी अप्रतीति के होनेसे, क्षणिक विज्ञानवादियों के, चक्षुके अभावकी कल्पनाकरने को भी शक्य नहीं है, तैसे ही सुषुप्तिविषे ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानके अभावकी कल्पना करने को अशक्यही है॥ और जो ऽ[विज्ञानवादी के मतबिषे विज्ञानसे भिन्न प्रकाशादिकों का अभाव है ताते प्रकाशरूप विज्ञानके परिणाम के अभाव होनेसे प्रकाश्यरूप विज्ञान के परिणामके संभव करके व्यभिचारके स्थलका अभावहै ताते तहां सुषुप्तिबिषे ज्ञान और ज्ञेय के अभावका व्यभिचार नहीं है, इस अभिप्राय से वादी शङ्का करताहै]ऽ कहे कि क्षणिक विज्ञानवादी जो है, सो ज्ञेय के अभावभये ज्ञानका अभाव कल्पताही है, हे वादी! जब ऐसेही है, तब ज्ञानके अभावका जो कल्पक (वृत्ति) सोई ज्ञेय तिस ज्ञेयके अभावका ज्ञान अंगीकार करते हैं वा नहीं, यह विज्ञान वादी सों पूछते हैं, सो तिसका उत्तर कहना योग्य है ९ हे सौम्य! २ तिन कहेहुये दोनों पक्षोंमें प्रथम पक्षबिषे ज्ञानके अभावकी सिद्धिनहीं है, क्योंकि तिसही अभावके ज्ञानका सद्भाव है ताते इसप्रकार कहते हैं, जिस ज्ञेयके अभावके ज्ञानसे तिस ज्ञानके अभावको कल्पता है, तिस ज्ञानका अभाव किस करके कल्पता है। किसी करके भी कल्पना करनेको शक्य नहीं॥ और द्वितीय पक्ष भी बनेनहीं। क्योंकि तिस ज्ञेयके अभावरूपअज्ञान को भी ज्ञानके अभावके कल्पक होनेका असंभव है ताते। और अवश्य ज्ञेयरूपहोनेसे तिसके अभावहुये तिस ज्ञेयके अभावकी कल्पनाका असंभवहै ताते, ज्ञेयके अभाव के ज्ञानके अङ्गीकार का पक्षयुक्त नहीं॥ और जो ऐसाकहे कि ज्ञानको ज्ञेयसे अभिन्न होनेकरके

ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानका अभावहोवेगा, सो बनेनहीं। काहेते कि अभावको भी ज्ञेयपने के अङ्गीकारते। (हे सौम्य!) जब विज्ञान-वादियों करके अभाव भी ज्ञेय और नित्य अंगीकार करते हैं, तब तिसज्ञेय से अभिन्न ज्ञानभी नित्यरूप कल्पना कियाही होगा, और तिस ज्ञान के अभाव को ज्ञानरूप होने से अभावपना कहनेमात्र ही है। और परमार्थ से ज्ञानका अभावपना और अनित्यपना नहीं है। और नित्यरूप ज्ञानके नाममात्र अभाव के आरोप विषे हमारी क्या हानि है कुछ भी नहीं॥ और जो ऐसाकहे कि अभाव ज्ञेयरूपहुआ भी ज्ञानसे भिन्न है, तब इस तेरे कहने से ज्ञेयके अभावहुये ज्ञानका अभाव जो तेरे मतमें माना है सो सिद्धनहीं होगा। और जो ऐसा कहे कि ज्ञेयवस्तु ज्ञान से भिन्न है, और ज्ञान जो है सो ज्ञेयसे भिन्न नहीं, सो बने नहीं, क्योंकि शब्दमात्र के भेदकरके वास्तविक भेदका असंभव है ताते। और जब ज्ञेय और ज्ञानकी एकता अंगीकार करताहै, तब ज्ञेयज्ञानसे भिन्न है और ज्ञेय से भिन्नज्ञाननहीं, यह जो कथनहै सो वह्नि (अग्नि अग्निसे भिन्न है और अग्निसे भिन्न वह्निनहीं) इसकथनवत् शब्दमात्रहीहै। एतदर्थ हे वादी! ज्ञान जोहै सो ज्ञेयसेभिन्नही सिद्ध होताहै। और ज्ञानको ज्ञेयसे भिन्न सिद्धहुये सुषुप्तिविषे ज्ञेयके अभावकेहोते ज्ञानके अभाव का असंभव सिद्ध भया॥ और जो ऐसाकहे कि सुषुप्तिविषे ज्ञेय के अभावहुये ज्ञानका अदर्शन है ताते ज्ञानका अभाव है, सो भी बने नहीं, क्योंकि सुषुप्तिरूप ज्ञेयके ज्ञानका अंगीकार है ताते वहां ज्ञानका अदर्शन असिद्ध है। और जिसकरकेविज्ञानवादीकेमतविषे सुषुप्ति में भी विज्ञानका सद्भाव अंगीकार करते हैं एतदर्थ ज्ञानका अदर्शन सम्भवता नहीं॥ और जो कदापि ऐसाकहे कि सुषुप्ति विषे भी ज्ञानको अपने आपकरकेही अपना ज्ञेयपना है, सो भी बने नहीं, क्योंकि अभावस्थलविषे ज्ञान और ज्ञेयका भेद सिद्ध होता है ताते। और जिसकरके अभावरूप ज्ञेयको विषयकरने वाला जो ज्ञान तिसको अभावरूप ज्ञेय से भिन्नहोने करके ज्ञेय

और ज्ञानका भेद सिद्ध है ताते सो सिद्धभया भेद " मृतकके जिलावनेवत्, पुनः विपरीत करनेको सैकड़ों विज्ञानवादियों से भी अशक्यहै ॥ और जो विज्ञानवादी ऐसाकहे कि ज्ञानको ज्ञेयपना ही है। तो सो भी अन्यज्ञानकरकेही ज्ञेय होवेगा। और सो ज्ञान भी अन्य ज्ञानकरके ज्ञेयहोवेगा, ऐसे तुम्हारे पक्ष बिषे अनवस्था दोष होगा, सो भी बने नहीं। क्योंकि सर्ववस्तु के समूह के विभागका सम्भवहै ताते। और जिस पक्षबिषे सर्ववस्तुका समूह अपनेसे भिन्न किसी भी ज्ञानका ज्ञेयहै, तिस पक्षबिषे उक्त दोष है। और ऐसे जब हम मानतेहोयँ तब हमारे पक्षबिषे अनवस्था दोष होय। और जिसकरके ऐसे ज्ञानको विषयकरनेवाला ज्ञान रूप तीसराभाग हमों करके नहीं मानते हैं, किन्तु तिस ज्ञेयसे भिन्न जो ज्ञान सो ज्ञानहीं है और ज्ञानसों भिन्न जो ज्ञेय सो ज्ञेय ही है। इसप्रकार दूसरा विभागही हमोंकरके मानते हैं। ताते हमारे पक्षबिषे अनवस्थादोष सम्भवता नहीं ॥ और जो विज्ञानवादी ऐसा कहे कि तुम्हारे मतबिषे जब ज्ञानरूप ब्रह्म आपही अपनेका विषय नहीं, तब ब्रह्म के सर्वज्ञपनेकी हानि होती है, सो दोष ऽ [अर्थात् जानने योग्य सर्ववस्तुके अज्ञानके होनेसेही सर्वज्ञताकी हानि होती है और प्रकारसे नहीं, और अन्यथा शशशृंग (खरगोशके सींग) आदि अत्यन्त असत्य पदार्थोंके अज्ञान से किसी के भी मतबिषे सर्वज्ञता नहीं होगी (अथवा सर्वज्ञता की हानि नहीं होगी) एतदर्थ हमारेमतबिषे तिस सर्वज्ञताकी हानि रूप दोषकी प्राप्तिनहीं, (क्योंकि ज्ञानस्वरूपको अपनाआप ज्ञेयत्व शशविषाणवत् है) किन्तु तिस विज्ञानवादी कोही उक्त दोषकी प्राप्तिहोती है। क्योंकि तिसविज्ञानवादीकरके ज्ञानकी अवश्य ज्ञेयरूपताका अंगीकार है ताते आप ज्ञान करकेही अपना ज्ञेयपना मान्या है। और तिस अपने करके अपने ज्ञेयपनेको " अभावरूप ज्ञेयको विषयकरनेवाले ज्ञानको अभावरूप ज्ञेयसे भिन्नहोनेकरके, ज्ञेय और ज्ञानका अन्यपनासिद्धहै " सो पूर्वके ग्रन्थभाग विषे

दूषितहोने से अन्य ज्ञेयपने के अंगीकार से सर्व्वज्ञताका असम्भव है, ताते इस अभिप्राय से सिद्धान्ती कहे है [ऽ भी तिस विज्ञान वादीकोही होहु । हमको तिस मायिक सर्व्वज्ञपने के खण्डन विषे क्या दोष है, कुछ भी नहीं । और विज्ञानवादी के मत बिषे 'ज्ञान' ज्ञेयरूप है, एतदर्थ ज्ञान के ज्ञेयपने के अंगीकार से दूसरा अनवस्थारूप दोष भी अवश्यही होगा] ॥ क्योंकि विज्ञान-वादी के मतबिषे ज्ञान को आपसे अज्ञेय होने करके अनवस्था रूप दोष अनिवार्य्य है [यहां यह अर्थ है कि विज्ञानवादी के मतबिषे ज्ञान को आप करके ही आपका ज्ञेयपना मान्या है, तिसके असम्भव को "ज्ञेय और ज्ञान का पृथक्पना सिद्ध है" इस उक्त पूर्व्व ग्रन्थ के भाग बिषे कथन किया होने से, परिशेष ते ज्ञान को अन्य ज्ञान के ज्ञेयपने के होने से तिस ज्ञान का भी अन्य ज्ञाता है, तिसका भी अन्य ज्ञाता है । इसप्रकार प्राप्तभया जो अनवस्था दोष सो निवारण करने को अशक्यही है] और जो ऐसा कहे कि तुम्हारे मतबिषे भी यह अनवस्था दोष तुल्य ही है ऽ [अर्थात् हे सिद्धान्तिन् ! तुम्हारे मतबिषे भी ज्ञान को अज्ञेयपने के हुये तिसके व्यवहार की असिद्धि होवेगी । और अन्य ज्ञान के ज्ञेयपने के हुये अनवस्था होवेगी । इस अभिप्राय से वादी शंका करता है] ऽ सो बने नहीं ऽ [हमारे मतबिषे ज्ञान को स्वप्रकाश होने करके आपही करके अपने व्यवहारकी सिद्धि है ताते और ज्ञान के भेद के अंगीकार से अनवस्था दोष की प्राप्ति नहीं है, इस अभिप्राय से सिद्धान्ती समाधान करता है] ऽ क्योंकि ज्ञान की एकता का सम्भव है ताते । और सर्व्व देश-काल और पुरुष आदि अवस्थावाला एक ही ज्ञान, नामरूपादि अनेक उपाधियों के भेद से 'सूर्य्यादिकों के जलादि उपाधिगत प्रतिबिम्बवत्, अनेक प्रकार का भासता है, एतदर्थ हमारे मत बिषे यह अनवस्था दोष नहीं है ॥ और तैसेही चैतन्य के नित्य पने करके अधिष्ठानपना सिद्ध है तिसके हुये इस श्रुति बिषे यह

षोड़शकला का आरोप करते हैं ॥ ननु ॥ इस श्रुति से मृत्तिका के पात्रविषे वदरी (बेर) के फलवत् इसही शरीर के भीतर परिच्छिन्न पुरुष है सो नित्य कैसे सम्भवे, अर्थात् सम्भवता नहीं । सो कथन बने नहीं । क्योंकि सो प्राणादिकला का कारण है ताते । और जिस करके शरीरमात्र करके परिच्छिन्न आत्मा को श्रद्धाआदिक कलाका कारणपना निश्चय करनेको शक्य नहीं है । एतदर्थ सो पुरुषही सर्व कला का कारणहै । और जिसकरके सो सर्व कलाका कारण है, ताते शरीर को कलाका कार्य होने से सो शरीर पुरुष की कार्यकला तिसका कार्यरूप अपनी उत्पत्ति से पूर्व अविद्यमान आप शरीर सो अपने विषे अपने कारण के कारण पुरुष को मृत्तिका के पात्रविषे वदरी फलवत् परिच्छिन्न करने को समर्थ होवे नहीं ॥ और जो कहे कि जैसे बीजका कार्य वृक्ष और तिसका कार्य आम्रादि फल, सो अपने कारण के कारण बीज को अपने भीतर करने करके परिच्छिन्न करता है । तैसे शरीर जो है सो अपने कारण के कारण पुरुष को भी अपने भीतर करनेकरके परिच्छिन्न करता है । सो कथनबने नहीं । क्योंकि फलका कारण वृक्ष तिसकी उत्पत्तिका कारण जो बीज तिस बीजकी और फल के अन्तर्गत बीजकी व्यक्ति का भेद है तिस भेद करके, और बीज सावयव होताहै ताते, और पुरुषकी व्यक्तिकी एकताहै ताते और पुरुषको निरवयवता है ताते, [फल और बीजकी व्यक्तिके भेद से इस दृष्टान्तगत प्रथम हेतु को यहां वर्णन करते हैं] दृष्टान्त विषे कारणरूप बीज से अन्यही बीज वृक्षके फल से आवृत्त है । और दार्ष्टान्त विषे तो अपने कारणका कारणरूप सोई पुरुष शरीर के भीतरकिया सुनते हैं । [अब बीजको सावयव होनेसे इस दृष्टान्तगत द्वितीय हेतुको वर्णन करते हैं । यहां यह रहस्य है कि दृष्टान्त विषे यद्यपि कारणरूप बीजकेही वृक्ष और तिसके फल और तिस फल के अन्तर्गत बीजरूप से परिणामते तिन कारण और कार्यरूप बीजकी व्यक्तिभेदके होते भी एकताहै तथापि तिसका कारण-

रूप बीजको सावयव होने से वृक्षवत् फल के आकार से परिणाम को प्राप्त भये अवयवन से भिन्न जो अवयव है, तिनके ही तिस फलके अन्तर्गत बीजरूप से परिणामते उन बीजों का भेद करके फल का और तिसके अन्तर्गत बीजका आधार आधेयभाव होता है। और यहां दार्ष्टान्तविषे तो पुरुषको निरवयव होनेसे शरीर का और पुरुषका आधाराधेयभाव बने नहीं] किंवा बीज और वृक्ष आदिकों को सावयवहोने से उनका परस्पर आधार और आधेयभाव बने है और पुरुष निरवयव है और कला और शरीर सावयव हैं, एतदर्थ तिनका परस्पर आधाराधेय भाव बने नहीं। और जब इस हेतु करके आकाशका भी आधारपना शरीर को अघटित है, तब आकाश के कारण पुरुष का आधारपना शरीर को अघटित होय इसमें क्या कहना है, किन्तु कुछ भी नहीं। ताते हे वादी! तैंने जो बीजका दृष्टान्त दिया सो दार्ष्टान्तके समान नहीं, किन्तु विषम है। और जो ऐसा कहे कि दृष्टान्तसे क्या प्रयोजन है प्रमाणरूप श्रुति के वाक्य करके ही पुरुष को परिच्छिन्नपना होवेगा। सो भी बने नहीं। क्योंकि वाक्यको कारकताका अभाव है। और जिस करके श्रुतिका वचन वस्तु के अन्यथा करनेविषे समर्थ होतानहीं, किन्तु जैसा अर्थ होय तैसे अर्थके प्रकाशने विषे समर्थ होताहै, ताते " इहैवान्तःशरीरेसौम्य सपुरुषो " ‹ शरीर के भीतर सो पुरुष है › यह जो श्रुतिका वचन है सो, अंडके भीतर आकाश है, इस वाक्य के अर्थवत् जानना। और ज्ञानका निमित्त होनेसे दर्शन श्रवण मनन और विज्ञान आदिक लिंगोंसे शरीरके भीतर परिच्छिन्नवत् प्रतीतहोता है। एतदर्थ। हे सौम्य! शरीरकेभीतर सो पुरुष है। इसप्रकार कहते हैं। और पुनः आकाशका कारणहुआ मृत्तिका के पात्रसे बदरीफलवत् शरीर करके परिच्छिन्न पुरुष है, इसप्रकार तो मूढ़ पुरुष भी मनसे भी कहने को इच्छा करता नहीं, तब प्रमाणभूत श्रुति कहनेको न इच्छा करती होय, इसमें क्या कहना है

ननु "यस्मिन्नेताः षोडशकलाः प्रभवन्ति" ‹ जिस विषे यह षोड़श कला उपजती हैं › इसप्रकार द्वितीय वाक्य विषे पुरुषके विशेषणार्थ अध्यारोप कहा है, पुनः "सईक्षाञ्चक्रे" ‹ सो ईक्षणको करताभया › इत्यादिरूप तृतीयवाक्यसे जो कलाकी उत्पत्तिका कथन सुना है, सो यद्यपि अधिक अर्थ भी है, तथापि कलाकी उत्पत्ति किसक्रम से होती है, इस अर्थके जानने के प्रयोजनसे "सईक्षाञ्चक्रे" ‹ सो ईक्षणको करता भया › इत्यादिरूप यह अधिक अर्थ भी कहते हैं। और चेतन पूर्वकही प्राणादि कलारूप सृष्टिहोती है, इसअर्थ के जतावने को चेतन के आश्रित ईक्षण (अवलोकन) का कथन है। इसप्रकार शंकासमाधानरूप उपोद्घात [अर्थात्, अन्यके गृहसे गोरस के मांगनेवाली स्त्रीवत् प्रतिपादन करने के योग्य अर्थको मनमें रखके तिसकेअर्थ अन्य अर्थका जो प्रतिपादन तिसको , उपोद्घात, कहते हैं] को कह के अब तृतीय वाक्यके अर्थको कहते हैं । हे सौम्य ! जो षोड़श कलावाला पुरुष भारद्वाज के पुत्र सुकेशा नाम मुनिने पूछाथा कि "सईक्षाञ्चक्रे । कस्मिन्नहमुत्क्रान्त उत्क्रान्तो भविष्यामि कस्मिन् वा प्रतिष्ठते प्रतिष्ठास्यामीति" ‹ सो किसकेनिकसेहुये मैं निकस्या होऊंगा वा किसके स्थितहुये स्थितको प्राप्तहोऊंगा । ऐसे ईक्षण को करताहुआ › अर्थात् सो किस कर्त्ता विशेष के देहसे निकसे हुये मैं निकस्या होऊंगा और किसके शरीर विषे स्थित हुये मैं स्थिति को प्राप्त होऊंगा, इसप्रकार प्राणादिककी सृष्टिके शरीरसे बाहर निकसने और शरीरके भीतर स्थित होने रूप फलको। और "प्राणाच्छ्रद्धा" ‹ प्राणसे श्रद्धा को रचता भया› इत्यादिरूपक्रम आदिकको [यहां आदि शब्द से "लोकोंविषे नामको रचताभया" यह आधार और आधेय का भेद ग्रहण करते हैं] विषयकरनेवाले ईक्षण (ज्ञान) को करता भया ॥ इति सिद्धम् ॥३ । ६ २ ॥

॥ ४ ॥ हे सौम्य ! यहां यह सांख्यमत के अनुसारी वादियों की शंकाहै ॥ ननु ॥ आत्मा अकर्त्ता है और प्रधान (प्रकृति) कर्त्ता

है, एतदर्थ पुरुष के भोग मोक्षमय अर्थरूप प्रयोजनको अंगीकार करके प्रधान जो है, सो महत्तत्त्वादिरूप आकारसे प्रवृत्त होता है। तहां यह पुरुषको स्वतन्त्रता करके ईक्षणपूर्वक कर्त्तापने का जो वचन है सो अघटितहै। किंवा सत्त्वादि गुणोंकी साम्यावस्था

स प्राणमसृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियम्। मनोऽन्नमन्नाद्वीर्यं तपो मन्त्राः कर्म्मलोका लोकेषु च नाम च ॥ ४ । ६३ ॥

(मिश्रअवस्था) मय प्रमाण प्रतिपादित प्रधानरूप सृष्टिकर्त्ताके होतसंते। अथवा परमाणु कारणवादी के मतानुसार ईश्वरेच्छा के अनुवर्ती सृष्टिका कारण परमाणुके होतसंते। आत्माको कर्त्तापनेके अंगीकार करने से [समीचीन नहीं क्योंकि] आत्मा को एक अद्वैत होनेसे, जैसे कुलालरूप कर्त्ताके दंडचक्रादि सहकारी साधनवत्, सहकारी साधनका अभावहै, ताते दुःखादि अनर्थ के हेतु जे प्राणादिक संसार तिसके कर्त्तापने का असंभवहै एतदर्थ आत्माको सृष्टिके कर्त्तापने का जो वचनहै सो अघटितहै। और जिसकरके प्रत्यक्ष चेतनावान् बुद्धिपूर्वक कार्यका कर्त्ता पुरुष सो अपने अर्थ अनर्थको करता नहीं। एतदर्थ भी [ज्ञानस्वरूपआत्माको] अनर्थरूप संसारके कर्त्तापनेविषे प्रवृत्त होना संभवे नहीं। एतदर्थही पुरुषके भोग मोक्षमय प्रयोजनसे ईक्षणपूर्वकवत् नियमित क्रमकरके वर्त्तमान अचेतन प्रधानविषे 'जैसे राजाके सर्व अर्थके करनेवाले मंत्री आदिकोंविषे, यहराजाहै, इसआरोपवत्' स ईक्षाञ्चक्रे ' ‹ सोईक्षणको करताभया › इत्यादि रूप यह चेतनवत् आरोप है। [अर्थात्, 'जैसे' बालकविषे पीतरंग करके युक्तारूप गुणके योग से अग्निशब्दका प्रयोगहै तद्वत्, मुख्य ईक्षणके कर्त्ता विषे विद्यमान जे नियमित क्रमकरके प्रवर्त्तमान होने रूप गुण तिसके योगसे ' स ईक्षाञ्चक्रे ' ‹सो ईक्षणको करताभया › ऐसा प्रधानविषे गौणप्रयोगहै सोई उपचार और आरोप कहतेहैं] यह

सांख्यवादियों का कथन है । सो बने नहीं ॥ क्योंकि आत्मा को भोक्तापनेवत् कर्त्तापनेका सम्भव है ताते । और जैसे सांख्यवादी के मत विषे चेतनमात्र अपरिणामी आत्मा का भी भोक्तापना मानते हैं, तिसप्रकार वेदवादी हमारे मतविषे स्वरूप से अकर्त्ता हुये आत्माको भी मायारूप उपाधिका किया श्रुति उक्तप्रमाणसे जगत्का कर्त्तापना घटित है ॥ और जो सांख्यवादी ऐसाकहै कि हमारे मतविषे आत्माको अन्य महदादितत्त्व के स्वरूप की प्राप्ति रूप परिणाम से आत्मा की अनित्यता, अशुद्धता, अनेकताके निमित्त जे चेतनमात्र जे स्वरूपका विकार तिस विकार से पुरुष के स्वरूपविषेही भोक्तापना तिसके होने से चेतनमात्र जो स्वरूप का विकार (अविवेक से परिणाम) सो दोषके अर्त्थ नहीं । और तुम्हारे वेदवादियों के मतविषे आत्माको सृष्टिका कर्त्तापनाहोने से आत्मा का अन्य तत्त्व के स्वरूपकी प्राप्तिरूप परिणामही होता है । एतदर्त्थ आत्मा को अनित्यता आदि सर्व्व दोषों की प्राप्ति होयगी ([पूर्व्वरूपके परित्यागसे अन्यरूपकी जो प्राप्ति तिसको परिणाम कहते हैं सो परिणाम सजातीय अन्यरूपकी प्राप्ति के हुये, अथवा विजातीय अन्यरूप की प्राप्तिकेहुये अनित्यता आदि दोषोंको सम्पादन करताही है । एतदर्त्थ भोज्य (भोगनेयोग्य) के अविवेकरूप उपाधि का किया आत्माका भोक्तापना मानना योग्य है । तिसकारण करके तिस भोज्यके अविवेकरूप उपाधिसे रचितपना सो तिस परिणाम के कर्त्तापने विषे भी तुल्यही है । इस अभिप्रायसे भाष्यकाराचार्य्य मुख्य समाधानको कहते हैं यहां यह भाव है कि परमात्मारूप पुरुषको उपाधिकृत जो कर्त्तापनेका सम्भवहै ताते । और भ्रान्ति करके इस परमात्मासे भिन्न अपूर्णकाम जीवों का सम्भव है ताते तिनके पुरुषार्त्थरूप प्रयोजनका सृष्टापना तिसही प्रकार के चेतन रूप पुरुषको भी बनता है । एतदर्त्थ चेतनरूप अधिष्ठानवाले अचेतनरूप प्रधानको सो जीवों के भोग मोक्षमय पुरुषार्त्थरूप प्रयोजन का सृजतापना

युक्त नहीं] ७ यह जो सांख्यवादियों का कथन सो बने नहीं। क्योंकि हमारे मत विषे वास्तव में सहकारी साधन रहित अकर्त्ता आप्तकाम, एक अद्वैत आत्मा को भी अविद्यारूप सहकारी के आश्रय नामरूपात्मक उपाधि और अनुपाधि के किये भेदका अंगीकार है, तिसकरके आत्मा को नामरूप उपाधिका कियाही बन्ध मोक्ष और तिनके साधनरूप शास्त्रोक्त व्यवहारादिक विशेष मानते हैं। और परमार्थ दृष्टिसे अनुपाधि का किया एकही अद्वितीय शुद्ध और सूक्ष्मबुद्धि से ग्रहण करने योग्य, और सर्व तर्कयुक्त बुद्धियोंका अविषय, अभय और शिव (कल्याण) रूपतत्त्व मानते हैं। तिसविषे कर्त्तापना किंवा भोक्तापना और क्रिया और कारक का फल नहीं है। क्योंकि सर्व पदार्थों को अद्वैत रूपता है ताते ॥ हे सौम्य ! सांख्यवादी तो वेदसे बाहर बोलने वाले होनेसे पुरुषविषे अविद्या से आरोपितही कर्त्तापना और क्रिया कारकका फल है, ऐसे कल्पिके पुनः तिससे भयको प्राप्त होते हुये परमार्थसेही पुरुषके भोक्तापनेको इच्छते हैं। और पुरुष से अन्यतत्त्व प्रधान को परमार्थ वस्तुरूपही कल्पतेहुये। और सांख्यवादियोंसे अन्य जे जैनादिक सो नैयायिकों करके शिक्षाको प्राप्त भई बुद्धिवालेहुये अपने मतके खंडनको पावते हैं। और तैसेही जैनादिकोंसे अन्य जे नैयायिक हैं सो सांख्यवादियोंकरके अपने मतके खंडनको प्राप्त होतेहैं ॥ हे सौम्य ! इसप्रकार परस्पर विरुद्ध अर्थकी कल्पनाकरनेसे, मांसके अर्थी (श्वानाशिकरादि) जीवों वत् परस्पर विरुद्ध क्रुद्धभये भेदरूप अर्थकेही देखनेवालेहुये तिस करके परमार्थ तत्त्वकी ओर से दूरसे दूरही खींचेगये हैं, ताते यथार्थ निरुपाधि शुद्ध आत्मतत्त्व के अबोधसे 'दूरात् सुदूरे' दूरसे दूरही चले जाते हैं। एतदर्थ जे मुमुक्षु पुरुष हैं सो उनके मतको अनादरपूर्वक त्यागके वेदान्त अर्थ के तत्त्वरूप एकताके ज्ञानको (श्रद्धा विश्वासपूर्वक) आदरदेनेवाले होयँ। इसप्रयोजन के लिये हमों (वेदवादियों) करके इन तर्क करनेवाले सांख्य

वादियोंके मतविषे कुछ दोषका दर्शन देखावते हैं, उनके मतको खंडन करनेके तात्पर्य से नहीं तैसे यहां यह अर्थ शास्त्रान्तरविषे कहाहै तथा च 'विवदन् खेऽवनिक्षिप्य विरोधोद्भवकारणम् । तैः संरक्षितसद्बुद्धिःसुखंनिर्यातिवेदवित्' ८ वेदवेत्ता जो है, उन वादियों से विवाद को करताहुआ चिदाकाशविषे विरोधकी उत्पत्तिके कारण (परमार्थसे भेददर्शन) को छोड़के रक्षाको प्राप्त भई बुद्धिवाला हुआ । अर्थात् ऽ[भेददर्शनको परस्परवादियों से उक्तदोषकरके ग्रस्तहोनेसे अद्वैतही निर्दोषहै ऐसे निश्चयवालीबुद्धिकरके युक्तहुआ]ऽ सर्वविकल्पसे शान्त होताहै, किंवा ऽ['कुछ दोष का दर्शन देखावतेहैं ' तिसहीको वर्णनकरतेहुये, कर्त्तापने आदिकोंका आरोपितपनाही सांख्यआदियोंकरकेभी कहनायोग्यहै ऐसा कहतेहैं]ऽतुम्हारे सांख्यमतविषे भोक्तापने और कर्त्तापनेरूप दोनों विकारोंकेविलक्षणपनेका असम्भवहै, एतदर्थ पुरुषविषे यह कर्त्तापने रूपजातिसे अन्य जातिरूप भोक्तापनेकरके युक्तविकार कौनहै, कि जिसकरके पुरुष भोक्ताहीहै कर्त्ता नहीं । और प्रधान तो कर्त्ताहीहै भोक्तानहीं, इसप्रकार तुमकरके कल्पना करते हो सो कहो ॥ ननु, भोक्ता और चैतन्यमात्र स्वरूपही जो पुरुषहै, सो अपने चेतनरूपसे ही विकारको पावताहै, अन्यतत्त्वरूप परिणामसे नहीं। और प्रधान तो अन्यतत्त्वोंके परिणामसे विकारको पावता है, एतदर्थ सो प्रधान, अनेकरूप है अशुद्धहै और जड़है, ताते विलक्षण एकशुद्ध और चैतन्यरूप पुरुषहै । एतदर्थ उनदोनोंके भिन्न २ धर्मरूप कर्त्तापने औरभोक्तापनेकाभी विलक्षणपनाहै, यह सांख्यवादीने कहा ऽ[पुरुषका चैतन्यरूपसे परिणाम जो तैंने कहा सो क्याआगन्तुक (उत्पत्तिनाशवाला) है, वा नहीं, तहां जो द्वितीयपक्षक है तो तिसपक्षविषे कर्मजन्य कदाचित् होनेवाला भोग असिद्ध होयगा और प्रथम पक्षकहै तो तिस पक्षविषे आगन्तुक विलक्षणतावाला होनेसे अनित्यता आदिककी प्राप्तिसे पुरुषका प्रधानसे कुछविशेष नहीं है ॥ औरजो ऐसाकहे कि भोगकेअनन्तर

पुरुषको पुनःअपने स्वरूपसेही स्थितहोनेसे अनित्यता आदि दोष नहींहै, तब प्रधानको भी प्रलयबिषे 'विशेषके अभावसे, अपनेस्वरूप करकेही स्थितिके अंगीकार करने से तिसका विशेष न होगा। इसप्रकार अबसिद्धान्तीदूषणदेतेहैं॥]ऽतबतहांसिद्धान्तीकहेहैंयह विशेष बनेनहीं, क्योंकि भोगकी उत्पत्तिसे पूर्वप्रधान और पुरुषके विकारके भेदको कथनमात्रताही है ताते। ऽ [संक्षेपसे कथनकिये वाक्यका यहां वर्णन करते हैं]ऽ जब केवल चैतन्यमात्र पुरुषको भोगकी उत्पत्तिकालविषे भोक्तापना विशेष होताहै, औरजबभोगके निवृत्तभये पश्चात् तिस (भोक्तापनारूप) विशेषसे रहित पुरुष चैतन्यमात्रही होताहै, तब प्रधानभी तैसेही महत्तत्त्वादि आकार से परिणामको पाय पश्चात् प्रलयकालविषे तिस (महत्तत्त्वादि) आकारको छोड़के प्रधानरूपसे स्थितहोताहै, इसरीतिसेचैतन्य रूपसे पुरुषके विकारकी कल्पनाविषे भी विचार कियेहुये अर्थसे प्रधानका और पुरुषका कुछभी विशेषनहीं देखते हैं। एतदर्थ सांख्यवादियों करके प्रधान और पुरुषका विशेष (विलक्षणविकार) अर्थात् दोनोंका पृथक् २ विलक्षणरूप विकारहै, इसप्रकारवाणी मात्रसेही कहाजाताहै परन्तु सोसिद्धहोतानहीं॥ऽ[पुरुषका चैतन्य रूपसे जो परिणामहै सो आगन्तुक अन्यरूपनहीं। इसप्रकार पूर्वोक्त दोनों पक्षोंमेंसे द्वितीयपक्षको मानिके वादीकी शंकाहै]ऽऔर जो ऐसाकहै कि भोगकाल बिषेभी 'भोगसे पूर्ववत्, चैतन्यमात्रही पुरुषहै तिसका कदाचित् होनेवाला अन्यरूप नहीं, एतदर्थ प्रधानसे विशेष (विलक्षण) है सो कहनाबने नहीं । क्योंकि जब इसप्रकार मानेंगे तब पुरुषको परमार्थ से भोग होयगा। और कर्मसे जन्य जो कदाचित् होनेवाला भोग सो असिद्ध होगा। ऽ [इस दोषके निवारणार्थ आगन्तुक परिणामको मानिके भोगकालसम्बन्धी विकारमात्र भोग है। सो भोग पुरुषकोही होताहै प्रधानको नहीं। इसप्रकार भोगके सद्भावरूप विशेषमात्र से वादीकी शंकाहै]ऽऔर जो कहे भोगकाल विषे चैतन्यमात्र पुरुषका

विकार परमार्थरूपही है तिसकरके सो भोगकालसम्बन्धी विकारमात्र भोग पुरुषकोही होताहै,प्रधानको नहीं । एतदर्थ भोग के सद्भाव और असद्भावकरके प्रधान और पुरुषका विशेष (भेद) है ऽ[तहांभी क्या भोगकालसम्बन्धी विकारमात्र भोगहै, किंवा भोगकालसम्बन्धी चैतन्यमात्रगत विकारवान्पना भोगहै, इस प्रकार विकल्प करिके, प्रथम पक्षविषे भोगकालमें प्रधानको भी सुखादिक आकार से विकारवाला होने से भोग होयगा, इस प्रकार सिद्धान्ती कहतेहैं]ऽ सो बने नहीं, क्योंकि इसप्रकारहोनेसे भोगकालविषे प्रधानकोभी सुखादि आकारसे विकारवान् होनेसे भोक्तापनेकी प्राप्ति होयगी ॥ ऽ [अब द्वितीयपक्षानुसार वादीकी शङ्काहै] ऽ और ऐसा कहे कि चैतन्यमात्रकाही जो विकार सोई भोक्तापना है, तब उष्णतारूप विकारसे असाधारण धर्मवाले अर्थात् अग्निका असाधारण धर्म उष्णताहै, तिस धर्मवाले अग्नि आदिकोंके अभोक्तापने विषे कारणका असंभवहोगा, अर्थात् अपने असाधारण विकारवाले अग्निआदिकोंको भी भोक्तापने की प्राप्तिहोगी ॥ और जो ऐसाकहे कि प्रधान और पुरुष इन दोनोंका एककाल विषे भोक्तापना है सोभी बने नहीं । क्योंकि प्रधान को परमार्थरूपताका अभावहै ताते पुरुषकेसमान पारमार्थिक भोक्तापना असिद्ध है । और दोनोंको भोक्ताहुये परस्परके प्रकाशने विषे दोनों प्रकाशने के गुणप्रधानभाव के असंभववत्, प्रधान और पुरुषका अन्योऽन्य गुणप्रधानभाव (शेषशेषीभाव) जो पूर्व अंगीकार किया है तिसका असंभवहोगा॥ और ऽ[ननु । भोग जोहै सो सत्त्वगुण प्रधान चित्तरूप से परिणामको प्राप्तभई प्रकृति तिसकाही धर्म है । क्योंकि तिस चित्तको प्रकृति का विकार होने का संभव है ताते । और पुरुषका धर्म नहीं क्योंकि सो पुरुष अविकारीहै ताते । और तिसपुरुषको भोगके अभावका प्रसंगनहीं । क्योंकि तिसपुरुषको तिसप्रकारके चित्तके प्रतिबिम्बके तत्त्व (निजरूपता) मात्रसे भोक्तापनेका कथनहोता है, इसप्रकार वादी

शंकाकरेहै] ऽ जो कहे कि भोगरूप धर्मवाले मुख्य सत्त्वगुणकरके युक्त जो चित्त तिसविषे पुरुष के चेतनपने के प्रतिविम्बरूप से निर्विकाररूपकोभी भोक्तापनाहै । सोभी वने नहीं । क्योंकि जब इस तेरेकहे प्रकार है तब पुरुषको परमार्थसे सुखदुःखादि भोगरूप अनर्थका अभावभया तव तिसकरके किसकी निवृत्तिके अर्थ पुरुषके मोक्षका साधन शास्त्ररचते हैं, किन्तु किसीकेभी निवृत्त्यर्थ नहीं ॥ और जो ऐसाकहे कि परमार्थसे यद्यपि पुरुषको अनर्थ का अभाव है, तथापि अविद्याकरके आत्मा विषे आरोपित जे अनर्थ तिसकी निवृत्तिके अर्थ शास्त्रकी रचनाहै । तव, परमार्थसे पुरुषभोक्ताहीहै, कर्त्ता नहीं, और प्रधान कर्त्ताही है भोक्तानहीं, और परमार्थकरके पुरुषसे अन्य वस्तु सत्रूप प्रधानहै,इसप्रकार की जो यह सांख्य मतवादियों की कल्पना सो, वेदबाह्य व्यर्थ और निष्प्रयोजन है। एतदर्थ मुमुक्षुओं करके आदरकरने योग्य नहीं ॥ और जो सांख्यवादी ऐसा कहे कि तुम वेदवादियोंके सर्वकी एकतारूप पक्षविषे भी निवारण करनेयोग्य बन्धका अभाव है, ताते शास्त्रकी रचना आदिक मोक्षके साधनकी व्यर्थताहै। सोभीबने नहीं, क्योंकि आत्माकी एकताके निश्चय अनुभववाले पुरुषसे विपरीत जे अज्ञानी पुरुष तिनके प्रतिदोषके सम्पादन करनेकाअभाव है ताते । और जिसकरके शास्त्रकर्त्ता आदिक और तिसके फलके अर्थी पुरुषों विषे शास्त्रकी रचना निष्प्रयोजनहै वा सप्रयोजनहै, इसप्रकारकी सो कल्पनाहोय । और आत्माकी एकता के निश्चय कियेहुये शास्त्रके कर्त्ताआदिक पुरुष, तिस आत्मासे भिन्न नहींहै । और तिनशास्त्र कर्त्ता आदिकोंके अभावहुये, यह शास्त्रकी रचना सप्रयोजनहै वा निष्प्रयोजन है, ऐसी यह कल्पना अघटितहै ऽ८ अथवा तिसएकताके निश्चयके अभाव होनेसे निवारण करनेयोग्य जे बन्धनादिक तिनके सद्भावसे बन्धकी निवृत्तिके अर्थ यह शास्त्रकी कल्पना अघटितनहीं? किंवा आत्माकी एकताके निश्चयहुये, तिस निश्चयका उत्पादक होनेसे तिसशास्त्रकी प्रयोजनसहित ताको अपने अनु-

भवकरके सिद्धहोनेसे, तिसआत्माकी एकता के निश्चय अनुभव वाले पुरुषकरके यह शङ्का करनेकोभी शक्य नहीं, इसप्रकार अब कहतेहैं] ऽ और जिसकरके आत्माकी एकता को मानने वाले तुम्ह करके आत्मा की एकता के निश्चय किये हुये शास्त्ररूप प्रमाणका प्रयोजन अंगीकार किया, एतदर्थ शास्त्रसप्रयोजनहै किंवा अप्रयोजनहै, यह शङ्का करनेकोभी अशक्यहै। और तिस आत्माकीएकता के निश्चय कियेहुये कल्पना का असम्भवहै। इस अर्थको "यत्रत्वस्यसर्व्वमात्मैवाभूत्तत्केन कं पश्येदित्यादि" < जहां (जिस विज्ञानदशा विषे) तो इसपुरुषको सर्व्वआत्माही होताभया, तहां किसकरके किसको देखे, इत्यादि। > यह शास्त्र कहताहै। और "यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति इत्यादि" < जहां द्वैतवत् होताहै तहां अन्य अन्यको देखता है > इत्यादि रूप यह बृहदारण्यक उपनिषद्रूप शास्त्र, अज्ञानीके विषे शास्त्रकी रचना आदिकके सम्भवको कहता है। और 'अविभक्ते विद्या विद्येऽपरापरे' < पर और अपररूप विद्या और अविद्या भिन्नरूपहै > इत्यादि शास्त्रके आदि विषेही विद्या और अविद्याका भेद सूचित कियाहै एतदर्थ वेदान्तशास्त्ररूप प्रमाण महाराजा की युक्तिरूप भुजा करके रक्षित इसआत्माकी अभेद एकतारूप देशविषे तार्किकमत के वाद रूपशस्त्रकरके युक्त योद्धोंका प्रवेश कदापि होता नहीं ॥ हे सौम्य! इसप्रकार के कथन करके ब्रह्म को अविद्याकृत नामरूपउपाधिकरके रचित अनेक शक्ति और साधनके किये अनेकपनेकेसद्भावसे, ब्रह्मको सृष्टिआदिकोंके कर्त्तापने विषे < दंडचक्रादिवत्, साधनका अभावरूपदोष और अपने आपके अर्थ अनर्थ का कर्त्तापना आदि दोष जो पूर्व सांख्यमतवादीने कहाथा, तिस का खंडनभया जानना ॥ और सांख्यवादीने जो पूर्व दृष्टान्त कहाथा कि, जैसे, राजाके सर्वकार्य के कर्त्ता कार्याध्यक्ष विषे उपचारसे, "यह राजा के कार्यका कर्त्ता राजा है," इसप्रकार कहते हैं, सो दृष्टान्त यहां बने नहीं। क्योंकि 'स ईक्षाञ्चक्रे' < सोई-

क्षणको करताभया >। इसप्रमाणरूप श्रुतिके मुख्य अर्थ का बाध है ताते। और ‹यजमानपाषाणहै› इत्यादि स्थल विषे जहां शब्द का मुख्यार्थ संभवे नहीं, तहांहीं शब्दकी गौणीवृत्तिकी कल्पना रूप उपचार देखा है। और यहां प्रधानके पक्षविषे तो › अर्थात् ‹ [प्रधानके पक्षविषे केवल ईक्षणकी प्रतिपादक श्रुतिका असंभव रूप दोषहै, ऐसे नहीं, किंतु वास्तवसे तो तिसको जगत् का स्थापना भी संभवता नहीं, ऐसे अब कहते हैं। यहां यह अर्थ है कि प्रधानकी मुक्तपुरुष को छोड़के बद्धपुरुषों के प्रतिही प्रवृत्ति और कर्त्ता कर्म आदिक की अपेक्षा से बन्ध और मोक्ष आदि शब्दके वाच्य भोग मोक्षके अर्थ नियमित प्रवृत्ति संभवे नहीं। इसकथन करके पुरुष के अर्थ भोग मोक्षमय अर्थ रूप प्रयोजन को अंगीकार करके प्रधान प्रवृत्त होता है। इस प्रकार जो पूर्व शङ्काके अवसर बिषे सांख्यवादीने कहारहा सो खंडनकिया]› अचेतनरूप प्रधानकी मुक्त और बद्धपुरुषों की अपेक्षा से, और कर्त्ता कर्मदेश और कालरूप निमित्तकी अपेक्षासे पुरुषके प्रतिबंध और मोक्ष आदिक फलके अर्थनियमित प्रवृत्ति बने नहीं। और हमों करके उक्त सर्वज्ञ ईश्वरके कर्त्तापने बिषे तो उक्त प्रवृत्ति बने है॥ इस प्रकार वादीके पक्षको खंडन करके, अब श्रुतिके व्याख्यानको कहतेहुये 'स प्राणमसृजत' ‹सो प्राणको सृजता भया› इस वाक्यके तात्पर्य रूप अर्थको कहते हैं। ईश्वररूप पुरुषकरके ; राजावत्, सर्वकार्य विषे अधिकारी ऐसाप्राण सृजाजाताहै। ऐसे तात्पर्यार्थ को कहके अब प्रश्नपूर्वक अक्षरार्थ को कहतेहैं॥ प्र०॥ हे भगवन्! कैसे सृजता भया॥ उ०॥ स प्राणमसृजत' ‹सो प्राणको सृजता भया › सो पुरुष, उक्त प्रकार से त्रिकालवर्त्ति वस्तुओंको विषयकरनेवाले ज्ञानरूप ईक्षणको करके सर्वके प्राणमय (समष्टिप्राणरूप) हिरण्यगर्भनामवाले सर्व प्राणियों के करणों (इन्द्रियों) के आधाररूप अन्तरात्माको सृजता भया। और ऽ 'प्राणाच्छ्रद्धा' ‹ प्राणसे श्रद्धा › ऽ इसप्राणसे सर्व प्राणि-

योंकी शुभकर्म बिषे प्रवृत्तिकी कारणरूप श्रद्धाको सृजता भया। तिसके पश्चात् कर्मफलके उपभोगके साधनरूपदेहके अधिष्ठान और कारणरूप पंचीकृत पंचमहाभूतों को सृजताभया। तहां 'खं वायुर्ज्योतिरापः पृथिवी' <आकाश वायु ज्योति जल पृथिवी (को सृजताभया)>ऽ शब्दगुणवाले आकाशको, और अपने गुण स्पर्श और कारण के गुणशब्दकरके युक्त दोगुणवाले वायुको, और तैसेही अपने गुणरूप और कारणके गुणशब्द और स्पर्श-करके युक्त तीनगुणवाले तेज (अग्नि) को, और तैसेही अपनेगुण रस और कारण के गुण शब्द स्पर्श और रूपकरके युक्त चार गुणवाले जलको, और तैसेही अपने गुण गंध और कारण के गुण शब्द स्पर्श रूप रस, इनसर्वके मिलनेकरके पांचगुणवाली पृथिवी को सृजताभया। और ८ 'इन्द्रियम्। मनोऽन्नमन्नाद्वीर्य' <इन्द्रियोंको मनको अन्नको और वीर्यको (सृजताभया)>ऽ तैसेही तिनहीं पंचभूतों से अपंचीकृत अवस्था बिषे ज्ञानके अर्थ और कर्मके अर्थ दशसंख्यावाले दोप्रकारके अर्थात् ज्ञानके अर्थ पांच ज्ञानेन्द्रिय को और कर्मकेअर्थ पांचकर्मेन्द्रियको, और तिन इन्द्रियोंके निया-मकशरीराबिषे स्थितसंशय और संकल्प विकल्पादि लक्षणवाले मन को सृजताभया। और इसही प्रकार प्राणियोंके कार्य और कारण को सृजके तिनकी स्थिति के अर्थ ब्रीहि (तंडुलधान्य) और यव आदिरूप अन्नको सृजताभया। तिसके पश्चात् उस अन्नको भोजन कियेहुयेसे, सर्वकर्म बिषे प्रवृत्तिके साधन वीर्य (बल) को सृजताभया। और ऽ 'तपो मन्त्राः कर्म लोकालोकेषु च नाम च' <तपको मन्त्रोंको लोकको लोकबिषे नामको (सृजताभया)>ऽ अन्तःकरणकी अशुद्धता करके भया जो पापाचरण तिन पापों करके संकरता (मिश्रभाव) को प्राप्तभये तिस बलवाले प्राणि-योंके संकरताके निवारणार्थ चित्तशुद्धिके साधन तपको सृजता भया और तिन तपसे शुद्धभये हैं अन्तर के और बाह्यके कारण जिन्हों के, ऐसे प्राणियों के अर्थ कर्मके साधनभूत जे ऋग यजु

साम और अथर्वणवेदरूप मन्त्रोंसे अग्निहोत्रादिरूप कर्म होता भया । और तिन कर्मोंसे कर्मके फलरूप चतुर्दशलोक होतेभये । और तिनलोकों बिषे उत्पन्नभये प्राणियोंका देवदत्त यज्ञदत्त विष्णुदत्त आदिरूप नाम होताभया ऽ ॥ [ननु, ईश्वरके स्रष्टापनेके कथनसे कलाओं का सत्यपना अङ्गीकार करना चाहिये । क्योंकि शुक्तिरजत आदिकरूप आरोप बिषे स्रष्टपनें (उत्पन्न होने) के व्यवहारका अभाव है ताते यह आशंकाकरके, नेत्र बिषे अंगुली के धारण और नेत्रमर्दन आदिक प्रयत्न से उत्पन्न किये दो चन्द्र मशक और मक्षिका आदिकों के आरोप के देखने से, 'अथ रथान्रथयोगान् पथः सृजत इति' ' अब जाग्रत् के अनन्तर, रथ को और रथमें जुड़नेवाले अश्वादिकों को और मार्गों को सृजता भया, इस बृहदारण्य की श्रुति बिषे उत्पन्न होनेकरके उक्त स्वप्न के पदार्थोंकी भ्रमरूपताके देखनेसे, ईश्वरकरके रचित कलाओं का सत्यपना मानना चाहिये यह कहना बने नहीं । इस अभिप्रायसे अब भाष्यकाराचार्य्य कहते हैं । यहां तिमिरशब्द जो है सो नेत्रबिषे अंगुली के धरने आदिक निमित्त के ग्रहणार्थ है] ऽ इसरीति से यह सोलहकला प्राणियों की अविद्या आदि दोषरूप बीजकी अपेक्षासे, तिमिरदोष करके युक्त दृष्टि से सृजेहुये दो चन्द्र मशक और मक्षिका आदिकोंवत्, और स्वप्न के द्रष्टाकरके सृजे हुये सर्व स्वप्नके पदार्थवत् सृजीहुई है । पुनः ऽ [जिसप्रकार आत्माके निश्चयार्थ अध्यारोपको कहके अब तिसके अपवादको प्रकट करते हैं] ऽ समुद्रबिषे नदियोंवत् तिसही पुरुषबिषे अपने २ नामरूपादि उपाधियों के भेदको त्याग के अतिशयकरके लीन होती हैं ॥ ४ । ६३ ॥

५ ॥ हे सौम्य ! अब उक्त कलाओं के अपवादको भी सविस्तर दृष्टान्त सहित श्रवणकरो ॥ 'स यथेमा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति' ' सो जैसे यह नदियां वहती हुई और समुद्र है अयन (आत्मभाव) जिनका ऐसी हुई समुद्र

स यथेमा नद्यः स्पन्दमानाः समुद्रायणाः समुद्रं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते ॥ एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते स एषोऽकलोऽमृतो भवति तदेषश्लोकः ॥ ५ । ६४ ॥

को पायके अस्तता को प्राप्त होती हैं › ऽ सोसमुद्रविषे नदीके लय का दृष्टान्त कैसे है, तहां कहते हैं। जैसे लोक विषे यह नदियां बहतीहुई और समुद्र है अयन अर्थात् ‹ आदि अन्तमें आत्मभाव › जिनका ऐसी हुई समुद्रको पायके अपने नामरूप के तिरस्कार रूप अस्तताको पावती हैं। और ऽ 'भिद्येते तासां नामरूपे समुद्र इत्येवं प्रोच्यते ' ‹ और तिनके नाम (और) रूप नाशको पावते हैं समुद्र ऐसेही कहते हैं › ऽ अस्तको प्राप्तभई उन नदियों के गंगा यमुना गोदावरी आदि लक्षणवाले नाम और रूप यह दोनों नाशको पावते हैं। और तिन नामरूपके नाशभये पीछे अवशेष रहा जो जलरूप वस्तु, सो समुद्र ऐसे कहते हैं ॥ हे सौम्य ! जिस प्रकार यह दृष्टान्त है ऽ 'एवमेवास्य परिद्रष्टुरिमाः षोडशकलाः पुरुषायणाः पुरुषं प्राप्यास्तं गच्छन्ति ' ‹ ऐसेही इस परिद्रष्टाकी यह षोडशकला (सो) पुरुषहै अयन जिनका ऐसीहुई पुरुषको पायके अस्तको पावे हैं › ऽ तैसेही, उक्त लक्षणवाला प्रसंगविषे प्राप्त भया पुरुष जो परिद्रष्टा ऽ अर्थात् अपने प्रकाश के कर्त्ता सूर्यवत् सर्व ओरसे स्वरूपभूत दर्शन का कर्त्ता है इस परिद्रष्टा की यह प्राणादि सोलहकला हैं। सो उक्त सोलहकला नदी के अयनरूप समुद्रवत्, पुरुष है अयन (आत्मभाव को प्राप्ति) जिन कला की ऐसीहुई पुरुषरूप आत्मभाव को पाइके अपने नामरूप के तिरस्काररूप अस्तताको पावती है। और ऽ 'भिद्येते तासां नामरूपे पुरुष इत्येवं प्रोच्यते ' ‹ तिसके नामरूप नाशको प्रावते हैं, पुरुष

अरा इव रथनाभौ कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः । तं वेद्यं पुरुषं वेद यथा मा वो मृत्युपरिव्यथा इति॥ ६ । ६ ५॥

ऐसे कहते हैं > तिनकला के प्राणादिक लक्षणवाले नामरूपनाश को पावते हैं। और नामरूप के नाशभये पीछे जोकि अविनाशी तत्व अवशेष रहता है सो ब्रह्मवेत्ताओंकरके पुरुष ऐसे कहते हैं॥ जो पुरुष गुरुने देखाया है कलाके लयकामार्ग जिसको, ऐसाहुआ इसरीतिसे जानताहै " 'स एषो ऽकलो ऽमृतो भवति' < सो यह अकल अमृत होताहै > ऽ सो यह पुरुष, अविद्या काम और कर्म करके जन्य जो प्राणादिक कला तिनके विद्याकरके नाशभये कलारहितहोताहै। और जिसकरके अविद्याकृत कलारूप निमित्त (उपाधि) का किया देह से निकलने आदिक शब्दका वाच्य मरणादिक व्यवहाररूप मृत्युहै, ताते उन कलाके नाश भये यह पुरुष कलारहित होनेसेही अमृत (मरणरहित) होताहै < 'तदेषश्लोकः' < तिसाबिषे यह श्लोकहै > ? तिसही इस अर्थ बिषे यह श्लोक (अग्रिमवाक्यरूप वेदका मंत्र) प्रमाणहै॥५।६४॥

६॥ हे सौम्य! 'अराइव रथनाभौ' < जैसे रथकी नाभि बिषे अरा> अर्थात् ऽ[रथकेचक्र (पहिया) की नाभि (मध्यका काष्ठ) तिसको रथनाभि कहतेहैं, तिस रथनाभि बिषे और मार्ग को स्पर्श करनेवाली चक्ररूप नेमी (पूठि) तिसबिषे लगेहुये खड़े काष्ठ तिसको रथचक्रका परिवार कहते हैं। और तिनहींको अरा कहते हैं] सो जैसे रथचक्रके परिवाररूप अरा रथके चक्रकी नाभि बिषे प्रवेशको प्राप्तभये तिस रथचक्रके आश्रित होते हैं। तैसेही ऽ 'कला यस्मिन् प्रतिष्ठिताः' < कला जिसबिषे आश्रितहैं > ऽ प्राणादिकला जिस पुरुषबिषे 'उत्पत्ति स्थिति और लय, इन तीनोंकालोंबिषे आश्रित होते हैं ऽ 'तं वेद्यं पुरुषं वेद' < तिस जाननेयोग्य पुरुष को जानना > ऽ तिस कलाके आत्मरूप जाननेयोग्य सर्वत्र पूर्णहोनेसे अथवा सर्व शरीरोंरूपी पुरबिषे रहनेसे

तान् होवाचैतावदेवाहमेतत्परंब्रह्म वेद नातः परमस्तीति ॥ ७ । ६६ ॥

पुरुष तिस पुरुषपदसे लक्ष्य पुरुषको जैसाहै तैसाही जानना ॥ हे शिष्यो ! ऽ ' यथामावोमृत्युपरिव्यथा ' < तुमको मृत्यु पीड़ा मतकरै > ऽ तुमको मृत्यु जो है सो क्लेशको प्राप्त मत करै ॥ अर्थात् जिसकरके तुम क्लेशको प्राप्तभये दुःखीहोहो, एतदर्थ मैं कहताहौं कि तुम्हारेको क्लेश मत प्राप्तहो। इत्यभिप्रायः॥ ६ । ६५॥

७ ॥ हे सौम्य ! पिप्पलादनाम मुनीश्वर आचार्य उक्तरीत्या तिन अपने प्रश्नकर्त्ताओंको उक्त उपदेशकरके पुनः < ' तान् होवाच ' < तिनकेप्रति कहतेभये > ? तिन अपने शिष्यों को कहतेहुये कि हे प्रियदर्शन ! हे शिष्यो ! < 'एतावदेवाहमेतत्परंब्रह्मवेद' < इतनाही परब्रह्महै इसको मैं जानता हौं > ? इतनाही जानने योग्य परब्रह्म है इसको मैं जानता हौं और < ' नातः परमस्ति इति ' < इससे श्रेष्ठ नहीं है > इसकहे हुये परमपुरुष से अन्य अत्यन्त श्रेष्ठ जानने योग्य कोई नहीं है । हे सौम्य ! इसप्रकार अपने शिष्योंको अज्ञात और अवशेष रखने योग्य अन्य वस्तु के सद्भावकी आशंकाकी निवृत्ति के अर्थ और हम कृतार्थभये इस प्रकारकी निश्चय आत्मक बुद्धिके जननार्थ पिप्पलाद मुनीश्वर रूप सर्वज्ञ आचार्यने कहाहै ॥ ७ । ६६ ॥

८ ॥ हे सौम्य ! जब पिप्पलाद मुनीश्वररूप आचार्यसे उपदेशको पाय निःसंशयभये वे सुकेशाआदि छवो शिष्य आप कृतार्थ भये, तिस निःसंशय कृतार्थकर्त्ता गुरुके अर्थ ब्रह्मविद्या के प्रतिउपकार (बदला) कुछ भी न देखतेभये ॥ प्र० ॥ तब क्या करतेभये उ० ॥ 'तेतमर्चयन्तः ' < वे तिसका पूजनकरतेहुये > । अर्थात् वे छवो शिष्य तिस पिप्पलाद नामवाले अपने गुरुको दोनों पादों विषे पुष्पांजली अर्पण करनेसे और मस्तक साक्षात् उनके चरणों में रख प्रणिपात (दंडवत्) से पूजन करते हुये, कहते भये

ते तमर्च्चयन्तस्त्वं हि नः पिता योऽस्माकमविद्यायाः परंपारं तारयसीति । नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः इति ॥ ८ । ६७ ॥

इति श्रीप्रश्नोपनिषद्गतःषष्ठप्रश्नः ॥
इति प्रश्नोपनिषत्समाप्ता ॥

प्र० ॥ क्या कहते भये ॥ उ० ॥ 'त्वंहि नः पितायोऽस्माकं' ‹ आप हमारे पिताहौ › हे गुरो ! आप हमारे नित्य अजर अमर अभय ब्रह्मरूप शरीर के विद्याकरके जनक होनेसे पिताहौ । और ‹'अविद्यायाःपरंपारं तारयसीति' ‹ जो अविद्यासे परपारकेताईं तारतेहौ ›› जो आपही विपरीत ज्ञानमय जन्म जरा मरण रोग और दुःखादिरूप मकरादि तिन करके युक्त जो अविद्यारूप महासागर तिससे, पर विद्यारूप दीर्घ नौकाकरके ऽ महासागर के पारवत्, अपुनरावृत्तिरूप मोक्ष नामवाले पारकेताईं हमको पार करतेहौ, एतदर्थ आपका हमारेप्रति अन्य (जन्मदायक) पिता से अधिक पितापना घटित है ॥ और जब अन्यपिता भी शरीर मात्रकोही उत्पन्न और पालन पोषण करता है तथापि लोकविषे अत्यन्त पूजने योग्यहै, तब अत्यन्त अभयके दाता सद्गुरुरूप पिताके पूजनेकी योग्यताविषे क्या कहना है ॥ एतदर्थ 'नमः परमऋषिभ्यो नमः परमऋषिभ्यः इति' ‹ परमऋषियों के अर्थ नमस्कार होहु, परमऋषियों के अर्थ नमस्कार होहु, ‹ ब्रह्म विद्याके सम्प्रदायके कर्त्ता परमऋषियों के अर्थ नमस्कार होहु ॥ यहां जो द्विवार कथनहै सो ब्रह्मविद्याके आचार्यों विषे आदरार्थहै और 'इति,शब्दउपनिषद्की समाप्त्यर्थहै ॥ इति सिद्धम् ॥८।६७॥

प्रश्नोपनिषद् के षष्ठप्रश्न की भाषाटीका समाप्त।